संस्थापित १८६७ ई.

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १२६ ● : संयुक्तांक २० एवं २१ ● १६ व २३ मई २०२४ (गुरुवार) बैशाख शुक्लपक्ष पूर्णिमा सम्वत् २०८१ ● दयानन्दाब्द २०० वेद व मानव सृष्टि सम्वत्: १६६०८५३१२५

सार्वदेशिक सभा की चिन्तन बैठक

आर्य समाज स्थापना वर्ष के १५० वर्ष पूरे होने पर १० अप्रैल, २०२५ को मुम्बई में विशाल भव्य आयोजन तथा पूरे देश में विविध आयोजन की रूप देखा तय करने के लिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली द्वारा दिनांक १२ मई, २०२४ को १५ हनुमान रोड कनाटप्लेस, नई दिल्ली में एक ''चिन्तन बैठक'' का आयोजन किया गया। बैठक की अध्यक्षता सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री सुरेश चन्द्र आर्य ने की। बैठक में श्री सुरेन्द्र कुमार आर्य चेयरमैन जेवीएम ग्रुप श्री धर्मपाल आर्य, प्रधान दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा, श्री देवेन्द्रपाल वर्मा, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र., श्री विनय आर्य-महामंत्री, आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली, श्री विनय विद्यालंकार, श्री धर्मेन्द्र तोमर, खतौली सहित अनेक प्रदेशों के पदाधिकारीगण व कार्यकर्ता आदि उपस्थित थे।

बैठक में आर्य समाज की भविष्य की चुनौतियों को लेकर चर्चा की गयी तथा आगामी वर्ष २०२५ में मुम्बई में आर्य समाज के १५० वर्ष पूर्ण होने पर विशाल भव्य आयोजन को सफल बनाने के लिए पूरे भारत वर्ष की आर्य समाजों द्वारा विविध आयोजन करने, जन सम्पर्क अभियान चलाने व प्रचार कार्य जोर शोर से करने के लिए हर आर्य को कमर कस कर तैयार रहने के लिए कहा गया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा आर्य समाज की स्थापना का मुख्य उद्देश्य वैदिक धर्म का प्रचार व समाज में फैले पाखंड व कुरीतियों को समूल नष्ट करना था। इसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर हर आर्य को मिशनरी भाव से कार्य करना होगा तभी हम सफल होंगे व ऋषि के इस अधूरे कार्य को पूरा कर पायेंगे। विश्व आर्य महासम्मेलन फरवरी २०२४ प्रयागराज में कुम्भ के अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. द्वारा आयोजित होगा। यह विचार चिन्तन बैठक में आर्य प्रतिनिधि उ. प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा जी ने रखे।

वेदामृतम्

मुनयो वातरशनाः, पिशङ्गा वसते मला ।
वातस्यानु ध्राजिं यन्ति, यद् देवासो अविक्षत ।।

ऋग् १०.१३६.२

बृहदारण्यक उपनिषद् में उद्दालक आरुणि याज्ञवल्क्य से पूछते हैं कि वह सूत्र कौन-सा है, जिससे यह लोक, परलोक और समस्त भूत ग्रथित हैं? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया है कि वायु ही वह सूत्र है। इसी वायु को सूत्रात्मा प्राण भी कहते हैं। यही प्राण शरीर को भी धारण किये है। वचन-व्रती वाक्, दर्शन-व्रती चक्षु, श्रवण-व्रती श्रोत्र आदि सब इन्द्रियाँ श्रम से आवद्ध हैं, प्राण ही है जो अश्रान्त होकर चलता रहता है। वस्तुतः प्राण ही चक्षु, श्रोत्र, मन आदि सबका सम्राट् है, क्योंकि प्राण शरीर से उत्कान्त होने लगे तो उसके पीछे-पीछे सब उत्क्रान्त होने लगते हैं। मुनिजन इस प्राण की ही साधना करते हैं, प्राणरूप एक रज्जु या सूत्र से अपने आत्मा, मन, बुद्धि, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, अष्टचक्र, नाड़ी-चक्र आदि सबको ग्रथित करते हैं। वानप्रस्थाश्रम में तपः- साधना करनेवाले ये मुनि पूरक, कुम्भक, रेचक प्राणायामों द्वारा सिद्धि प्राप्त कर प्राण- वायु की ही गति का अनुसरण करने लगते हैं। प्राण-गति का अनुसरण करने से उनके प्रकाश का आवरण क्षीण हो जाता है, प्रकृति-पुरुष के विवेक-ज्ञान को आवृत करने वाला अविद्यादि पंच क्लेशों का पर्दा विच्छिन्न हो जाता है, मन वायु के समान लघु हो जाता है और मन में धारणा की योग्यता उत्पन्न हो जाती है। यहाँ तक कि प्राणों के साथ तादात्म्य स्थापित करने से मुनियों में सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से बाहर निकालकर वायु की गति के साथ-साथ संचार करने की सिद्धि भी प्राप्त हो सकती है। मुनिजन बाहर से मनोवृत्तियों को हटाकर जब अंतः प्रविष्ट हो जाते हैं, चमक-दमक-रहित वल्कल-वस्त्र या तत्सदृश सादे वस्त्र धारण करने में ही गौरव मानते हैं, प्राण में मन का संयम करते हैं, तब सचमुच वे प्राण-रूप या वात-रूप हो जाते हैं। उनके अन्दर बायु के समान जगत् की मलिनताओं को हरने की तथा प्राणदान करने की शक्ति आ जाती है। हे प्राणोपासक वानप्रस्थ मुनियो ! तुम वायु की गति का अनुसरण करते हुए हमें भी पावन करो।

साभार-वेदमंजरी

योगेश्वर एवं वेदर्षि दयानन्द

-डॉ. विवेक आर्य

आर्य समाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द सरस्वती वेदों के उच्च कोटि के विद्वान एवं सिद्ध योगी थे। योग में सफलता, वेदाध्ययन व वेद ज्ञान के कारण उन्हें सत्यासत्य का विवेक प्राप्त हुआ था। वह ईश्वर के वैदिक सत्य स्वरूप के जानने वाले थे। वेदों में सभी सत्य विद्यायें हैं। इन सब विद्याओं का ज्ञान भी उनको वेदाध्ययन एवं योग सिद्धि से ही प्राप्त हुआ था। उन्होंने घोषणा की थी कि वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक हैं। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। ऋषि दयानन्द से पूर्व महाभारतकाल पर्यन्त हमारे सभी ऋषि वेदों को सत्य ज्ञान का भण्डार स्वीकार करते थे। स्वामी दयानन्द जी ने ऋषि परम्पराओं को ही आगे बढ़ाया था। हमारे सभी ऋषि योगी होते थे। योग क्या है। योग आत्मा को परमात्मा से जोड़ने और ईश्वर का साक्षात्कार करने की विद्या को कहते हैं। योग मार्ग का आरम्भ महर्षि पतंजलि कृत योग दर्शन के अध्ययन से आरम्भ होता है। योग के आठ अंग हैं जो क्रमशः यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हैं। योग मार्ग पर आरूढ़ व्यक्ति को यम व नियमों का पालन करते हुए आसन और प्राणायाम का अभ्यास करना होता है। प्रत्याहार में इन्दियों को उनके विषयों से वियुक्त करते हैं और धारणा में चित्त को देह के किसी एक देश, अंग विशेष अथवा लक्ष्य विशेष में बांध देते है अथवा टिका देते हैं। ध्यान में चित्त को देह के जिस अंग विशेष व लक्ष्य प्रदेश में बांधा गया था उसमें पूर्ण रूपेण एकाग्रता को बनाये रखा जाता है। जब तक एकाग्रता बनी रहती है यह अवस्था ध्यान की होती है। यदि एकाग्रता भंग होती है तो ध्यान टूट जाता है। ध्यान की निरन्तरता व ध्यान की अवस्था ही समाधि कहलाती है। ऋषि दयानन्द ने योग के सभी अंगों को सिद्ध किया हुआ था जिससे वह एक सफल योगी थे। मनुष्य योगी तो बन सकता है परन्तु ज्ञान प्राप्ति के लिए उसे वेदांग के अन्तर्गत शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त व निघण्टु आदि का अध्ययन करना पड़ता है। इसके बाद वेदांग के कल्प व ज्योतिष ग्रन्थों का

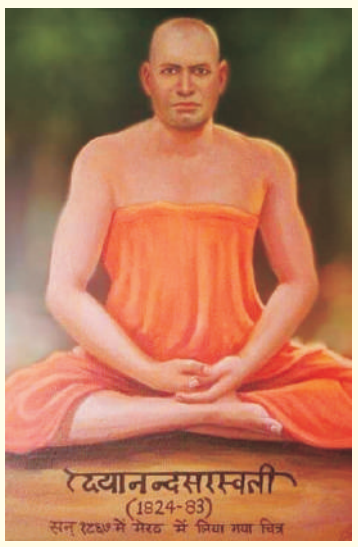

अध्ययन पूर्ण कर वेदों का अध्ययन किया जा सकता है। ऋषि दयानन्द ने वेदांग को स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी से मथुरा में पढ़ा था। इससे उनमें वेदों का अध्ययन करने की योग्यता उत्पन्न हो गई थी। शिक्षा समाप्त कर उन्होंने वेदों को प्राप्त किया और उनका आद्योपान्त अध्ययन किया जिससे वह वेदों के विद्वान बने। योगी ही वेदों का उच्च कोटि का विद्वान बनता है और ऋषि वेदों के अपूर्व विद्वान बने जिससे उनका उच्च कोटि का योगी होना सिद्ध है। मन्त्रार्थ द्रष्टा होने से वह ऋषि कहलाये। उन्होंने वेदों का अध्ययन कर उसका यथोचित ज्ञान प्राप्त करने के बाद उससे अपनी व्यक्ति उन्नति को ही सीमित नहीं किया अपितु उससे मानवमात्र को लाभान्वित करने के लिए उन्होंने वेद प्रचार का कार्य आरम्भ किया। इस कार्य को करने की प्रेरणा व आज्ञा उन्हें अपने विद्या गुरु प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी से मिली थी।

योगेश्वर कृष्ण जी ने महाभारत युद्ध में पाण्डव पक्ष का साथ दिया और उन्हें विजय प्राप्त कराई थी। वह योगी थे और एक योगी का दो सेनाओं के बीच चल रहे युद्ध में एक पक्ष को सक्रिय सहयोग देना और उनके मार्गदर्शन में उनके पक्ष का युद्ध में विजयी होने के कारण उनको योगेश्वर कृष्ण के नाम से पुकारा जाता है। स्वामी दयानन्द जी ने भी देश व विश्व में प्रचलित अविद्याजन्य सभी मतों के विरुद्ध वेद प्रचार रूपी आन्दोलन वा सत्याग्रह किया था। उन्होंने सब मतों के आचार्यों को शास्त्रार्थ की चुनौती दी थी। जिन लोगों ने उनसे शास्त्रार्थ किया उन सभी शास्त्रार्थों में स्वामी दयानन्द जी के वेद सम्मत पक्ष को विजय प्राप्त हुई थी। इस कारण वह दिग्विजयी संन्यासी बने। इस कार्य में जहां उनका वेद ज्ञान सहयोगी था वहीं उनके ब्रह्मचर्य का बल व योग साधना का बल भी सम्मिलित था। साम्प्रदायिक सभी मतों पर विजय प्राप्त करने के उनके दो ही कारण थे, प्रथम वह सफल योगी थे और दूसरा उनका वेद ज्ञान उच्च कोटि का था। अतः वह दो उपाधियों के पात्र बनें। योगी होकर उन्होंने विश्व के इतिहास में जो अपूर्व धार्मिक संग्राम व सफल शास्त्रार्थ किये उनसे वह योगेश्वर सिद्ध होते हैं और वेद प्रचार व अपूर्व कोटि का वेद भाष्य करने के कारण ऋषि वा महर्षि के पद पर गौरवान्वित हैं। हमें उनके जैसा ऋषि व महर्षि विश्व के इतिहास में दूसरा दृष्टिगोचर नहीं होता है। वेदभक्त गुरु विरजानन्द जी धन्य है जिनका शिष्य संसार का उत्तम योगी व ऋषि बना और उनके माता-पिता भी धन्य हैं जिन्होंने ऋषि दयानन्द रूपी दिव्यात्मा को जन्म दिया था।

स्वामी दयानन्द जी स्वयं तो उच्च कोटि योगी व वेदों के विद्वान थे, इसके साथ ही उन्होंने अपने सभी शिष्यों व अनुयायियों को भी योगी व वेदों का विद्वान बनाया है। सन्ध्या करके मनुष्य योगी बनता है और सत्यार्थ प्रकाश पढ़कर वैदिक विद्वान बनता है। ऋषि दयानन्द जी से पूर्व भारत में चतुर्वेद भाष्यकारों में सायण का ही नाम मिलता है जिन्होंने स्वयं व अपने शिष्यों से चारों वेदों का भाष्य कराया। महीधर व उव्वट आदि के यजुर्वेद व उसके कुछ अंशों पर ही वेदभाष्य मिलते हैं। कुछ वेदभाष्यकारों के नाम तो इतिहास में ज्ञात होते हैं परन्तु उनका किया वेदभाष्य नहीं मिलता। ऋषि दयानन्द ही एक मात्र ऐसे योगी व ऋषि हुए हैं जिन्होंने चारों वेदों पर ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका जैसा महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा वहीं वह सम्पूर्ण यजुर्वेद भाष्य संस्कृत व हिन्दी भाषा में पूर्ण कर दे गये हैं। लगभग साढ़े दस

क्रमशः.....६ पर

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

श्रीमद्दयानन्द सरस्वती की प्रथम जन्म शताब्दी के शुभ अवसर पर फरवरी 1925 में

श्री कुँवर चांदकरण जी शारदा का भाषण

माननीय उपस्थित सज्जनो !

मेरी माताओ, बहिनो और प्यारे भाइयो !

मेरे व्याख्यान का विषय 'महर्षि दयानन्द का सन्देश' वा Message of Maharishi Dayananda है। आज देश देशान्तर से आर्य भाई यहाँ योगीश्वर कृष्ण की जन्मभूमि (मथुरा) में दयानन्द भगवान् की जन्म शताब्दी मनाने के लिए एकत्रित हुए हैं। सारे मत मतान्तरों के अन्धकार को मिटाने वाला एवं वेद की ज्योति को जगाने वाला वही ऋषि दयानन्द था जिसने भारत को उठाया है । आप में से प्रत्येक जानता है कि महर्षि के सन्देश ने कितना काम किया है। आप में से प्रत्येक सज्जन और प्रत्येक माता जानती है कि महर्षि ने वह ज्योति जगाई है जिस ज्योति से लाखों आदमी अपने जीवन में नवीन जीवन धारण कर रहे हैं। उसी महर्षि की जन्म शताब्दी मनाने के लिए आप सब एकत्रित हुए हैं और चाहते हैं कि यहां से एक ऐसी बस्तु लेकर जायें जिससे हमारा आगामी प्रोग्राम और जीवन सुख, शान्ति और आनन्द से व्यतीत हो सके। साथ ही साथ महर्षि विरजानन्द जी द्वारा महर्षि दयानन्द को इसी नगरी मथुरा में दिये हुए उपदेश को कार्य में परिणत कर सकें। इस पाश्चात्य सभ्यता के युग में अब से १०० वर्ष पूर्व जब बालक दयानन्द गुजरात में ब्रह्मानन्द प्राप्ति के लिए अपने हृदय के उद्गारों को निकाल रहा था उसी समय इंग्लैंड में स्टीफेन्सन ने दूर-दूर की वस्तुओं को निकट लाने के लिए एक नई कल का आविष्कार किया था। आज जितने रेल, तार और जहाज दीख पड़ते हैं वे सब इसी प्रसिद्ध पुरुष के आविष्कार के फल हैं। उसी प्रकार महर्षि दयानन्द ने (Spiritualism) अध्यात्मवाद की जो नवीन ज्योति संसार में प्रज्वलित की उसी का फल है कि आज हम अन्य बहुत सी ज्योतियां संसार में देख रहे हैं। प्रिय भाइयो ! उस नवीन ज्योति से क्या असर पड़ा है? महर्षि दयानन्द तीन पदार्थों को अनादि बतला गए हैं। ईश्वर, जीव और तत्त्व (God, Soul & Matter) इन्हें बड़े-चड़े तत्त्ववेत्ता भी अनादि मानते हैं। उन तीन बातों को हरबर्ट स्पेन्सर ने तीन नामों से पुकारा हैः १. Revolution २. Evolution ३. Destruction. यह संसार कैसे बना ? मनुष्य इस संसार में क्या करता है? इत्यादि जिन प्रश्नों को आर्य मुनियों ने हल किया था उसका आज पाश्चात्य विद्वान् समझने का यत्न कर रहे हैं। एमर्सन (Emerson) गीता को पढ़ता है और पाल रिचर्ड (Paul Richard) जैसे विद्वान् यहां आते हैं। वे आपके सामने बतलाते हैं कि अब आपने जीवन ही बदल लिया है। अब नवयुग आ गया है। अन्धकार दूर हो गया। अब इस २०वीं शताब्दी में वह युग आयेगा जो प्राचीन अन्धकार में फँसे हुए लोगों पर अध्यात्मवाद (Spiritualism) का प्रभाव डालेगा। भारतवर्ष के अन्दर भी जितने धर्म हैं वे सब धार्मिक पक्षपातों से रहित हो रहे हैं। चाहे आप कृष्ण के प्लेट फार्म पर चलें, चाहे बौद्धों के, आपको पक्षपात-शून्यता ही दृष्टि आयेगी। आज ''सनातन धर्म सभा'' भी पक्षपात नहीं करती। यदि कुछ करती है तो यह करती है कि किस प्रकार से बाल विवाह रोका जाय, किस प्रकार से वृद्ध-विवाह रोका जाय। आज यही प्रश्न उठ रहा है कि किस प्रकार से लोगों के हृदय मन्दिरों को वेद की ज्योति से जगमगा दें। इसी प्रकार राजनीति धर्म के अन्दर खद्दर के गीत गाये जाते हैं और महर्षि दयानन्द का गुणानुवाद होता है। जितने राजनैतिक धर्म हैं सामाजिक धर्म हैं उन सबों के अन्दर आज महर्षि दयानन्द का काम दृष्टिगोचर हो रहा है। युरोप के अन्दर जितनी सोसायटियाँ हैं, जितने कुरान के अर्थ लगाने वाले पंथ हैं उनके अन्दर आर्यसमाज की बुद्धि से काम लिया गया है। अभी संसार के अन्दर बड़ा अधर्म फैला हुआ है। ५० वर्षों से आर्यसमाज के स्थापित होने पर भी भारतवर्ष में आज करोड़ों आदमी भूखे मर रहे हैं। लाखों विधवाऐं विलाप कर रही हैं। बाल-विवाह का दुःख दूर नहीं हुआ। अभी तक हम आश्रमों का प्रचार नहीं कर सके। अभी हमारे हजारों भाई एक वर्ष में ही मर जाते हैं। उनमें से २.२५ करोड़ आदमी इस प्लेग में मर गये। भारत में २३) की औसत आय है। आपकी ७८ फीसदी सन्तान दुर्बल हैं। आपके यहां इसका विचार तक भी नहीं है कि हमारी मातायें और बहिनें भूखी मर रही हैं। अभी लाखों, करोड़ों आदमियों की दवा दारू का समुचित प्रबन्ध नहीं है। इस काम को कौन करेगा? आपके सिवा सेवा-संघ खोलकर उनके दुःख को दूर करने वाला कौन है? वह है ''आर्यसमाज'' यदि उन्हें प्लेग, हैजा से बचाने वाली कोई शक्ति है तो आर्य समाज है। इसी लिये महर्षि ने ''सत्यार्थप्रकाश'' के भीतर सब से पहिले जो सन्देश दिया है वह आर्य-संगठन है।

मित्र, इन्द्र वरुण और अग्नि को अलग-अलग मानना गलत है। वे सब एक ही हैं। इस जगत् का सब कुछ 'ओंकार' के अन्दर आ जाता है। जैन, बौद्ध, सनातनी सब ही ''ओ३म्'' को मानते हैं। अतएव संसार की समस्त जातियों, मतों और पन्थों में ''ओ३म्'' है। आज ईसाई लोग भी कहते हैं कि यह जो गिर्जा है, मिशन है, वह ओंकार का अपभ्रंश है। उसी ओंकार की सर्वत्र महिमा गाने के लिये यदि कोई धर्मोपदेश देता है तो वह ''आर्यसमाज'' है। ''सत्यार्थ प्रकाश'' के प्रथम समुल्लास में लिखा है कि इस संगठन के लिए आपके मन में प्रेम उठता है। जब आपके अन्दर में प्रेम हो जायगा तब उस ब्रह्मानन्द से भी प्रेम हो जायगा, जिस समय आप यह जान लेंगे कि इसी ब्रह्म का असर सारे हृदय में है, उस समय मृत्यु शोक नहीं होंगे।

यह गलत कहा जाता है कि आर्य समाज मुसलमानों से विरोध करता है और इसी लिए यह शुद्धि करता है। मैं कहता हूँ कि आर्य समाज का धर्म है प्रेम करना। यदि यह मुसलमानों और ईसाइयों को अपने अन्दर लेना चाहता है तो केवल इस लिये कि हमारा उनके साथ प्रेम है। यदि सत्य मार्ग पर लाने के लिये हम ८ करोड़ मुसलमान और ईसाइयों को मिलाने के लिए कहते हैं तो यह हमारा प्रेम है। अतः शुद्धि आन्दोलन गिराने का आन्दोलन नहीं है। महर्षि ने बतलाया है कि समस्त संसार एक 'ओ३म्' के झण्डे के नीचे है। आप लोग बड़े शक्तिशाली थे तब ही तो भगदत्त चीन में राज्य करता था। बर्मा, आसाम और जर्मनी में आपके 'ओ३म' का झण्डा फहराता था। यह दूसरा सन्देश महर्षि ने प्रीति और प्रेम का दिया है जिससे समस्त संसार में एक 'ओ३म्' के झण्डे के नीचे एकता हो। उसने आप जहर का प्याला पीकर आत्म-बलिदान का उदाहरण दिया है। इसी वास्ते हमारे प्राचीन ऋषियों, सुर और असुरों में बराबर युद्ध चला आता है।

गतांक से आगे.....

सत्यार्थ प्रकाश

अथ चतुर्दशसमुल्लासारम्भः

अथ यवनमतविषयं व्याख्यास्यामः

४०-वो कौन मनुष्य है जो अल्लाह को उधार देवे। अच्छा बस अल्लाह द्विगुण करे उस को उस के वास्ते ।। - मं० १। सि० २० सू० २। आ० २४५ ।।

(समीक्षक) भला खुदा को कर्ज उधार लेने से क्या प्रयोजन ? जिस ने सारे संसार को बनाया वह मनुष्य से कर्ज लेता है? कदापि नहीं। ऐसा तो विना समझे कहा जा सकता है। क्या उस का खजाना खाली हो गया था? क्या वह हुण्डी पुड़िया व्यापारादि में मग्न होने से टोटे में फंस गया था जो उधार लेने लगा ? और एक का दो-दो देना स्वीकार करता है, क्या यह साहूकारों का काम है? किन्तु ऐसा काम तो दिवालियों वा खर्च अधिक करने वाले और आय न्यून होने वाला को करना पड़ता है ईश्वर को नहीं ।। ४०।।

४१-उनमें से कोई ईमान न लाया और कोई काफिर हुआ, जो अल्लाह चाहता न लड़ते, जो चाहता है अल्लाह करता है।। - मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २४९।।

(समीक्षक) क्या जितनी लड़ाई होती है वह ईश्वर ही की इच्छा से। क्या वह अधर्म करना चाहे तो कर सकता है? जो ऐसी बात है तो वह खुदा ही नहीं. क्योंकि भले मनुष्यों का यह कर्म नहीं कि शान्तिभंग करके लड़ाई करावें। इस से विदित होता है कि यह कुरान न ईश्वर का बनाया और न किसी धार्मिक विद्वान् का रचित है ।। ४१।।

४२-जो कुछ आसमान और पृथिवी पर है सब उसी के लिये है? चाहे उस की कुरसी ने आसमान और पृथिवी को समा लिया है।

- मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २५५ ।।

(समीक्षक) जो आकाश भूमि में पदार्थ हैं वे सब जीवों के लिये परमात्मा ने उत्पन्न किये हैं, अपने लिये नहीं क्योंकि वह पूर्णकाम है, उस को किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं। जब उस की कुर्सी है तो वह एकदेशी है। जो एकदेशी होता है वह ईश्वर नहीं कहाता क्योंकि ईश्वर तो व्यापक है ।।४२।।

४३-अल्लाह सूर्य को पूर्व से लाता है बस तू पश्चिम से ले आ. बस जो काफिर था हैरान हुआ था. निश्चय अल्लाह पापियों को मार्ग नहीं दिखलाता ।।

- मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २५८।।

(समीक्षक) देखिये यह अविद्या की बात! सूर्य न पूर्व से पश्चिम और न पश्चिम से पूर्व कभी आता जाता है, वह तो अपनी परिधि में घूमता रहता है। इस से निश्चित जाना जाता है कि कुरान के कर्ता को खगोल और न भूगोल विद्या आती थी। जो पापियों को मार्ग नहीं बतलाता तो पुण्यात्माओं के लिये भी मुसलमानों के खुदा की आवश्यकता नहीं। क्योंकि धर्मात्मा तो धर्ममार्ग में ही होते हैं। मार्ग तो धर्म से भूले हुए मनुष्यों को बतलाना होता है। सो कर्तव्य के न करने से कुरान के कर्तृता की बड़ी भूल है।।४३।।

४४-कहा चार जानवरों से ले उन की सूरत पहिचान रख। फिर हर पहाड़ पर उन में से एक-एक टुकड़ा रख दे। फिर उन को बुला, दौड़ते तेरे पास चले आवेंगे ।।

-मं० १। सि० ३। मू० २। आ० २६०।।

(समीक्षक) वाह-वाह देखो जी। मुसलमानों का खुदा भानमती के समान खेल कर रहा है। क्या ऐसी ही बातों से खुदा की खुदाई है। बुद्धिमान् लोग ऐसे खुदा को तिलांजलि देकर दूर रहेंगे और मूर्ख लोग फसेंगे? इस से खुदा की बढ़ाई के बदले बुराई उस के पल्ले पड़ेगी ।। ४४।।

क्रमशः अगले अंक में...

दयानन्द शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-संग्रह

ईश्वरीय ज्ञान अनादि है

११ सितम्बर, १८८२, तदनुसार भादों बदी चौदश, संवत् १९३९, सोमवार

मौलवी साहब - (प्रथम प्रश्न) ऐसा कौन सा मत है जिसकी मूल पुस्तक सब मनुष्यों की बोलचाल और समस्त प्राकृतिक बातों को सिद्ध करने में पूर्ण हो। जब बड़े-बड़े मतों पर विचार किया जाता है जैसे भारतीय वेद पुराण या चीन वाले चीनी, जापानी, वर्मी बौद्ध वाले, फार्सी जिन्द वाले, यहूदी तौरेत वाले, नसरानी इन्जील वाले, मौहम्मदी कुरान वाले तो प्रकट होता है कि उनके धार्मिक नियम और मूल विशेष एक देश में एक भाषा के द्वारा एक प्रकार से ऐसे बनाये गये हैं जो एक दूसरे से नहीं मिलते और इन मतों में से प्रत्येक मत के समस्त गुण और विशेष चमत्कार उसी देश तक सीमित हैं जहाँ वह वना है। जिनमें से कोई एक लक्षण तथा चिह्न उसी देश के अतिरिक्त दूसरे देश में नहीं पाया जाता, प्रत्युत दूसरे देश वाले अनभिज्ञता के कारण उसे बुरा जानकर उसके प्रति मानवी व्यवहार तो क्या उसका मुख तक देखना नहीं चाहते। ऐसी दशा में सब मतों में से कौन-सा मत सत्य समझना चाहिये ।

उत्तर - स्वामी जी का मतों की पुस्तकों में से विश्वास के योग्य एक भी नहीं क्योंकि पक्षपात से पूर्ण हैं। जो विद्या की पुस्तक पक्षपात से जो रहित है वह मेरे विचार में सत्य है और ऐसी पुस्तक का साधारण प्राकृतिक नियमों के विद्धि न होना भी आवश्यक है। मैंने जो खोज की है उसके अनुसार वेदों के अतिरिक्त कोई पुस्तक ऐसा नहीं है जो विश्वास के योग्य हो क्योंकि समस्त 'पुस्तकें किसी न किसी देश विशेष की भाषा में हैं और वेद की भाषा किसी देश विशेष की भाषा नहीं, केवल विद्या की भाषा है। क्योंकि यह विद्या की पुस्तक है, इसी कारण से किसी मत विशेष से सम्बन्ध नहीं रखती। यही पुस्तक समस्त देशीय भाषाओं का मूल कारण है और पूर्ण होने से प्रसिद्ध भलाइयों तथा निविद्ध बुराइयों की परिचायक है और समस्त प्राकृतिक नियमों के अनुकूल है।

प्रश्न मौ.-क्या वेद मत की पुस्तक नहीं है ?

उत्तर स्वा.-वेद मत की पुस्तक नहीं है प्रत्युत विद्या की पुस्तक है।

प्रश्न मौलवी- मत का आप क्या अर्थ करते हैं ?

उत्तर स्वा.- पक्षपात सहित को मत कहते हैं इसी कारण से मत की पुस्तक सर्वथा मान्य नहीं हो सकतीं।

श्रीराम का शील, शक्ति और सौन्दर्य

-परीक्षित मंडल 'प्रेमी'

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का दाक्षिण्यमय चरित्र अप्रतिम शील, आसमन्तात् भवतीति शक्ति और अनिंद्य सौन्दर्य की अगाध त्रिवेणी है। स्वस्तिप्रद स्वभाव की समुज्ज्वलता और स्वाभाविक सर्वात्म भाव सुकुमारता को शील कहते हैं। यह धर्म का सर्वोत्कृष्टतम रूप तो है ही, विमल हृदय की स्थायी स्थिति भी है। प्रयत्न करके भी श्रीराम अपने स्वभावगत शील का त्याग नहीं कर सकते। विरोधी के दुराचार और अत्याचार से भी जिसमें विकार नहीं आ सके, व्यापक फलक पर वही सर्वोच्य शील कहलाता है। इसलिए कवीश्वर तुलसीदास मानस में श्रीराम को शीलसिन्धु से विभूषित करते हैं। चित्रकूट में राम जब अपने गुरु वसिष्ठजी से मिलने के लिए चलते हैं, तब तुलसीदास लिखते हैं- सीलसिंधु सुनि गुर आगवनु। सिय समीप राखे रिपुवदनु''। इसी प्रकार श्रीराम के जीवन में अथ से इति पर्यन्त अर्थात् अयोध्या की क्रीडाभूमि में, जनकपुर की सुरम्य रंगभूमि में, कानन की ललित लीलाभूमि में और लंका की समरभूमि में भी इनके लोकोत्तर शील की बाँकी झांकी हमें बराबर मिलती है। इसीलिए श्रीराम के शील के प्रति ऋषि-मुनियों की, संत-महात्माओं की यानी समस्त मानवता की युग-युगान्तर से आस्था चली आ रही है। राम अपने शील से हिमालय से उत्तुंग दिखते हैं। इनकी समग्र शील की उपलब्धि से हमारा गौरव ऊपर उठता है और चाँद सूरज को छूने लगता है। श्रीराम के अद्भुत जीवट व्यक्तित्व में शील तत्त्व का समावेश करते हुए संत महाकवि तुलसीदास ने इन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया है। रावण का विधिवत् श्राद्ध कराने का परामर्श ये विभीषण को देते हैं। राम का यह कर्तव्य इनका स्वभावज शील का धर्म है। जीवन के सभी क्षेत्रों में इन्होंने अपने गरिमामय शील की विशिष्टता का निरन्तर परिचय दिया है। यही कारण है कि इनको अप्रतिम सुषमामय और मधुमय शील के समक्ष भार्गवेय परशुराम का तिग्मतेज धूमिल पड़ जाता है। महाप्राज्ञ तुलसी ने राम के शील विकास के इतने आयाम दिए है कि इन्हीं के अमितबल पर वे मर्यादा पुरुषोत्तम की महनीय शक्ति से विभूषित हो जाते हैं। इन्होंने अपने शील से अयोध्या को ही महिमा मंडित नहीं किया है, बल्कि संपूर्ण मानव समाज को महिमान्वित किया है।

पुनः शक्ति तत्त्व का समायोजन भी राम के विराट व्यक्तित्त्व में अपरिमित रूप से प्रदीप्तमान हुआ है। श्रीराम ने जनकपुर में जिस धनुष को बड़े-बड़े विभ्राट वीर योद्धा और महावलि राजा भी परिश्रम करके नहीं हिला सके, उसी को श्रीराम ने अनायास ही उठाकर तोड़ दिया। पंचवटी में चौदह हजार सुभट भट, विकट भट, दारूनभट और महाभट राक्षसों को जरा-सी देर में ही बिना किसी की सहायता के मार गिराया। पुनः वानरराज बालि जैसे महायोद्धा को एक ही वाण से मार डाला। धनुष पर वाण चढ़ानेमात्र से ही समुद्र में खलबली मच गई और वह सशरीर भयभीत होकर शरण में आ गया। इस प्रकार श्रीराम की विराट शक्ति का अद्भुत चमत्कार पूरे मानस में उपलब्ध होता है। परन्तु राम की यह ज्योति तरंगित शक्ति विध्वंसकारी न होकर लोक कल्याणकारी और स्वस्तिप्रद आदर्शों का नियामक है। यशस्वी महाकवि तुलसीदास ने रामचरितमानस में राम के अनेक दिगन्त फलक, कमनीय क्रिया कलाप तथा भूयसी भूषित शक्ति का प्रकाशन किया है। इस संदर्भ में वे सुबाहुवध, तारकावध, धनुषभंग, परशुराम तेज मर्दन, विराधवध, खर-दूषणवध, कबन्धवध, बालिवध, कुम्भकरण वध, एवं असुराधिप रावणवध को विराट फलक पर उपस्थापित करते हैं। इन्होंने मानव कल्याण के लिए ही शान्तिघातिनी आसुरी शक्ति से लोहा लिया है। इनके दिनमणि-सम भास्वर पराक, स्किम शक्ति के समक्ष दुःखदायिनी रावण की आसुरी शक्ति तिरोहित हो गई।

इसी प्रकार तुलसीदास ने राम को मानस में अप्रतिम सौन्दर्य की अद्भुत ज्योति से विभूषित करते हुए चित्रित किया है। वे सौन्दर्य के अगाध महार्णव है और निर्विकार शोभा के गरिमामय अतलांत सिन्धु है। एक शिशु के रूप में इनका सौन्दर्य-सुषमा अपरिमित है। किशोरावस्था में इनकी अद्भुत्त ज्योतिरसि छवि को देखकर महामुनि विश्वामित्र तक विस्मित रह जाते हैं। विदेह नगरी में प्रवेश के समय इनके ज्योति धवल दिव्य रूप और सुषुमामय सौन्दर्य को देखकर सभी मिथिलावासी विमोहित हो जाते हैं। धनुषभंग के समय परशुराम श्रीराम के सौन्दर्यरस सिन्धु में निमज्जित हो जाते हैं। पुनः पावन परिणय के अवसर पर प्रजापति इन्द्र और सदाशिव भी सुषमानिधि राम के अतुलनीय सौन्दर्य को निर्निमेष नयनों से निहारते रह

जाते हैं। कहते है- इस रूप में राम की अप्रतिम सौन्दर्य भूषित छविली छटा देवोपम है। तभी तो महाकवि तुलसीदास ने लिखा है- कोटि मनोज लजावनिहारे'' । अर्थात् करोड़ों कामदेव जिसको देखकर लजा जाते हैं। पुनः ''नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक''। अर्थात् जिनका नीले कमल के समान शरीर है, जिनकी शोभा करोड़ों कामदेवों से भी अधिक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राम के शालप्रांशु व्यक्तित्व तथा कमनीय चरित्र में शील, शक्ति और सौन्दर्य सभी परमोदात्तगुण और महतोमहीयान मानवीयमूल्य पूर्णरूपेण सन्निहित हैं। कहा जा सकता है कि राम के अवतरण से वर्तमान और भावी मानवों को अमृत ऊर्जा आलोक मिला तथा प्रखर अनल शीतल घवलधार होकर प्रकट हुई और भर्त्तृय-तिमिर सिन्धु में अमर्त्तृय आलोक किरण प्रोभ्दासित हुई है। इस प्रकार अक्षर पुरुष राम की जीवन पूर्णता में तीन तत्त्वों का समवाय संचारित हुआ दिखता है, जो अन्यत्र दुर्लभ ही है। इसलिए राम पुरुषों में मर्यादा पुरुषोत्तम है। इन्होंने शारीरिक शक्ति, ऊर्ध्वगत मानसिक प्राणतत्त्व और पराकास्मिक आध्यात्मिक अनुशासन या संयम से कतई पलायन नहीं किया, बल्कि इन्होंने मर्यादित एवं मनुजोचित परमोदात्त गुणों से रुढ़ियों का उन्मूलन किया तथा संकीर्ण जीर्ण विचार पर्णों को धराशायी कर निखिल भुवन में नवजीवन दायक शीतल चन्द्र कौमुदी को प्रदीप्त किया। इन्होंने उदयाचल से अस्ताचल तक संसागरा पृथिवी के त्रस्त मानवों को महामहिम गरिमा से मुकुलवान किया। क्योंकि असुराधिप रावण के भीषण उत्पीड़न, निष्ठुर अन्याय, दारून पदाघात्त और दमन ताण्डव नर्तन से लोक-लोकान्तर भयाक्रान्त होता जा रहा था। इन्होंने ऐसी विषादपूर्ण कुहेलिका और शांतिघातिनी छन्द्मनीति को विच्छिन्न किया और अपनी मनुजोचित संयमित सरलता तथा सर्वतोभद्र नैतिकता से निखिल भुवन की सृजन चेतना के प्रतिनिधि बनकर स्वस्तिप्रद आदर्शों की स्थापना की। इन्होंने हर कल्मष कुहेलिका पर अपना सौन्दर्य और ज्योति तरंगित चेतना शक्ति को संचारित किया। इन्होंने असुन्दर को सुन्दर बनाया तथा दानवता को मानवता से मंडित किया। इनकी विमलवाणी के ध्वनि निनाद से मूक भी वाचाल हो उठे और न जाने कितने तापित और शापित जन एवं शिलाखण्ड मधुमय पुण्यों के प्रभाव से सुमनस्यमान बन गए।

इनके सृजनात्मक सामर्थ्य ने तद्युगीन अन्तर्विग्रह, वैमनस्य को विच्छिन्न कर साम्य, बंधुत्व, शांति और उत्फुल्ल प्रेम में बदल दिया। इनके चरण चिन्हों में शिशिरांशु की शीतल किरणें तथा अंशुमान की अन्तर्मुखी ज्योति प्रदीप्तमान हो रही थी। अतः पुरातन इनके दिव्यालोक से दमक उठा और नूतन इनकी कमनीय कला से उभ्दासित हुई। व्यापक फलक पर वे भक्तवत्सल ही नहीं, बल्कि सर्ववत्सल की सुन्दर इकाई थे। वे सुन्दर को शुचितर बनाने में सुपरमेन थे। जो भी हो, सत्यसंध श्रीराम का विराट चरित्र सत्यशील, सुन्दर और प्रेम की मन्दाकिनी से ओतप्रोत है। इनका स्तवन अमोघ है और दर्शन भी अमोघ है। तभी तो इनका सदाचार विभूषित आचार- व्यवहार लोकगत होते हुए भी लोकोत्तर परिणति में निहित है।

इस प्रकार हम श्रीराम में शील, शक्ति और सौन्दर्य का विलक्षण सामजस्य देखते हैं। इसलिए समग्र ससार राम को मर्यादा पुरुषोत्तम मानकर इनके द्वारा स्थापित धर्मराज्य के लिए आज भी लालायित है। महर्षि वाल्मीकि ने राम के शील, शक्ति और सौन्दर्य के माध्यम से जिस अद्भुत विराट शक्ति को उद्घोषित किया है, यह विश्व साहित्याकाश में अतुलनीय है, और अप्रतिम है। इस प्रकार शील शिरोमणि दाशरथी राम का स्वच्छ, शूचि विशद, समुज्ज्वल चरित्र, शीलसिक्त भूषित और मृदुल है। इनकी शक्ति मर्यादित और सौम्यकान्त है तथा सौन्दर्य तत्त्व परम रमणीयता से अनुप्राणित है। इनका शील, शक्ति और सौन्दर्य सब कुछ महामृत्युंजय गुणो से विभूषित है और विश्व में अद्यतन और ऊर्ध्वगत रवि-शशि-सा ज्योतिर्मान है। तभी तो आदिकवि वाल्मीकि ने तूर्यस्यर में घोषणा की है-

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद्रामायण कथा लोकेषु परि चरिष्यति ।।

मो० ९१६२२०८००५

वेद-स्तवन

-परीक्षित मंडल 'प्रेमी'

वेद मूल है अखिल धर्म का, यह कालजयी विश्व की थाती है।
इसके हर पन्नों पर विकीर्ण, मुद मंगलमय चेतना लहराती है।।

सुरस सुधा सम शब्द है यह, दूषण वर्जित नवरस सरसाती है।
वेद मूल है अखिल धर्म का, यह कालजयी विश्व की थाती है।।

ऋतम्भरा प्रज्ञा की पयस्विनी है, ऋत के साथ छंदित है।
त्रयताप भदेस विभेदक है, द्युतिमान सत्कीर्ति तरंगित है।।

प्रक्षालित होता अन्तर्मन है, प्रणव-प्राण से संग्रन्थित है।।
जिसके मन:पटल पर स्पन्दित, रह सकता न कलुषित है।।

दुःख संशय चिन्ता सागर में है, यह सुखद सुरभि फैलाती है।
वेद मूल है अखिल धर्म का, यह कालजयी विश्व की थाती है।।

ऋषिवृन्द प्रशंसित है, अंबुधि-सा कल-कल्लोलित है।
विमल विधु पूषण सम है, इसमें सुरस रस प्रवाहित है।।

पराज्ञान-विज्ञान की प्रभा का, भव्य-भाव होता निनादित है।।
इससे सुमति प्रज्ञा शुचि संकल्प चेतना होती संवर्धित है।।

इससे मन-मानस की है चेतना तिग्म-तेजोदीप्त हो सरसाती है।
वेद मूल है अखिल धर्म का, यह कालजयी विश्व की थाती है।।

भूयसीज्योति की ज्योति है, यह, प्रभु का काव्य सुबंदित है।
तमसाछन्न प्रणव ज्योति ऋत को, यह करता स्पन्दित है।।

उद्घांत चित्त होता एकाग्र, यह ऋत-प्रवीत प्रणोदित है।
मृत्यु तिमिर अंक में अमरता को करता आलोकित है।।

महिमा रहेगी जगत में वेद की, यावत् सूर्य चन्द्र की ज्योति है।।
वेद मूल है अखिल धर्म का, यह कालजयी विश्व की थाती है।

प्रत्युत्तर

–आचार्य दर्शनेय लोकेश

महर्षि दयानन्द की जन्मतिथि : 20 सितम्बर ''भाद्रपद शुक्ल नवमी'', एक भ्रामक और निराधार जन्मतिथि।

उत्तर टिप्पणी १ - ऐसा कहना तो सच्चाई के विपरीत, लोगों को भ्रमाये रखने की गलत चेष्टा होगी। ज्योतिष गणित से प्रमाणित व सिद्ध है कि महर्षि का जन्म ११ सितम्बर १८२५ से पूर्व का नहीं हो सकता। महर्षि के वचन प्रमाण का योग करने पर जन्म तिथि २० सितम्बर १८२५ ही प्रमाणित यानी की सुनिश्चित होती है।

अभी कुछ दिन पहले डॉ० ज्वलन्त शास्त्री जी का फोन आया था और उनका एक ज्ञापन, लेख भी आया था। जिसमें उन्होंने महर्षि दयानन्द की जन्मतिथि पर परोपकारिणी सभा अजमेर में उनके और श्रीमान् आदित्य मुनि जी के मध्य में हुए शास्त्रार्थ की चर्चा की है।

उत्तर टिप्पणी २ - ये बड़ी उपोयोगी जानकारी मिली है। यह भी समझ रहा हूँ कि वास्तव में ये समूचा सन्देश अप्रत्यक्ष रूपेण डॉ० शास्त्री जी का ही है। यदि मैं गलत नहीं हूँ तो प्रतीत होता है कि वे मतभेद से मनभेद की तरफ बढ़ रहे हैं। मेरे लिए 'अनुजवत' डॉ ज्वलन्त कुमार शास्त्री, अभी अभी अपने एक लेख में और वह भी परोपकारी जैसी मानक पत्रिका के लिए लिखे गए लेख में मुझे 'लोकेषणा से पीड़ित' जैसे शब्दों के अलङ्करण से 'सम्मानित' कर चुके हैं। आपके 'वेदोज्ज्वला- १६' में मैंने आपको लेखन विषयक जो परामर्श दिया था उस से हुई आपकी नाखुशी को मैं अनुभव कर सकता हूँ। ऐसे में श्री शास्त्री के प्रयास से, लगे हाथ, आपको भी एक अवसर प्राप्त हो गया। आपके माध्यम से मिले लेख का हार्दिक आभार मानते हुए, हम डॉ० शास्त्री के निमित्त से ही, अपना यह उत्तर दे रहे हैं। धन्यवाद।

शास्त्रार्थ में यह सिद्ध करना था कि महर्षि दयानन्द की सटीक जन्मतिथि कौन सी है। उक्त शास्त्रार्थ परोपकारी मासिक पत्रिका में विस्तृत रुप से प्रकाशित भी हुआ है। जो आचार्य सत्यजित् मुनि जी के संयोजकत्व में संवाद के रुप में हुआ था। ज्ञातव्य हो कि श्रीमान् दार्शनिय लोकश जी के अनुसार महर्षि दयानन्द की जन्मतिथि ''भाद्रपद शुक्ल नवमी संवत् १८८१ विक्रमी तदनुसार २० सितम्बर १८२५ ई. है। आदित्य मुनि भी इसी तिथि को प्रामाणिक मानते है। किन्तु डां ज्वलन्त शास्त्री के अनुसार महर्षि दयानन्द की प्रामाणिक जन्मतिथि फाल्गुन कृष्ण दशमी संवत् १८८१ विक्रमी, तदनुसार १२ फरवरी १८२५ ई. है। पीछले शास्त्रार्थ में आदित्य मुनि निरुत्तर हो गये थे और उन्होंने अपने पक्ष से शास्त्रार्थ के लिए श्रीमान् दार्शनिय लोकेश जी का नाम सुझाया था। परन्तु उसके बाद कोई शास्त्रार्थ आगे हो न सका। अभी वर्तमान समय में दार्शनिय लोकेश जी ने महर्षि दयानन्द के २०० वें जन्म पूर्ति पर फिर एक बार आर्य नेताओं को और विद्वानों को महर्षि दयानन्द की गलत जन्मतिथि मनाने का आरोप लगाया है। उनका मानना है कि केन्द्र सरकार और आर्यसमाज दोनों ही गलत निर्धारण से मना रहें है। अस्तु!

उत्तर टिप्पणी ३ - शास्त्रार्थ नहीं संवाद। महर्षि दयानन्द की जन्मतिथि और आर्य समाज स्थापना तिथि की गूगल पर उपलब्ध जानकारी, भारत सरकार को मान्य जानकारी और स्वयं आर्य समाज को मान्य जानकारी, ''महर्षि दयानद सरस्वती का जन्म १२ फरवरी १८२४ और आर्य समाज की स्थापना ७ अप्रैल १८७५ को हुयी थी '' को मैं न स्वीकार करता हूँ और न कभी कर सकता क्योंकि ये सच नहीं हैं और सिर्फ इस एक कारण से यानी सच न होने से आर्य समाज के लिए भी स्वीकार्य नहीं होने चाहिए। पुनः - सार्वदेशिक धर्मार्य सभा (जिसमें कोई ज्योतिष का विद्वान भी रहा हो, इस बात की जानकारी नहीं है) द्वारा पहले ही निर्णीत (देखें - महर्षि की जन्म तिथि पर आपकी पुस्तक, पृष्ठ ११ में उद्धृत आचार्य विश्वश्रवा: जी के कथन की उद्धृत पंक्ति ९ से १५) कर ली गयी तिथि १२ फरवरी १८२५ ईस्वी जो एक अनुसन्धान कम और सम्पुष्टिकरण कार्य ही अधिक है (देखें - महर्षि की जन्म तिथि पर आपकी वही पुस्तक पृष्ठ १५ पर स्वामी आनन्दबोध सरस्वती के कथन से उदधृत प्रथम ४ पंक्तियां) जो स्वामीश्री के स्व हस्ताक्षर से प्रमाणित चारों प्रमुख प्रमाण वचनों पर एक साथ सत्य नहीं ठहरती। अस्तु, २० सितम्बर १८२५ यानी ''भाद्रपद शुक्ल नवमी, संवत् १८८१ जो स्वामीश्री (दयानन्द सरस्वती जी महाराज) के स्व हस्ताक्षर से प्रमाणित चारों प्रमुख प्रमाण वचनों पर एक साथ सत्य ठहरने के साथ ही ज्योतिष की काल गणना सिद्धि से पुष्ट होने के कारण अपने आप में दृढ़तम प्राकृतिक शिलालेख बन जाती है और जिसको भारत ही नहीं समस्त विश्व में, नकारने का सामर्थ्य किसी को भी नहीं हो सकता।

मैं पुनः दुहरा दूँ कि -

१ संवत् १८८१ में जन्म होने की लिखित स्वीकृति।

यानी शनिवार, २३ अक्टोबर १८२४ से बृहस्पतिवार, १० नवंबर १८२५ ई० के बीच।

२ संवत् १९०३ में गृह त्याग की लिखित स्वीकृति।

बुधवार, २१ ओक्टोबर १८४६ से रविवार, ०७ नवंबर १८४७ ई० के बीच।

३ गृह त्याग से कुछ पूर्व तक उनकी वय के २१वें वर्ष के पूर्ण (२० सितम्बर १८४६) हो चुके थे की लिखित स्वीकृति।

४ गृह त्याग से पूर्व विवाह की तैयारी एक मास में ही पूरी हो जाने का अभिकथन।

ज्ञातव्य है कि ३० अक्टोबर १८४६ को देव उठानी एकादशी के बाद विवाह निश्चित होजाना था। यह एक बहुत ही खास बात है जिसने युवक धनेश त्रिवेदी जी (हमारे स्वामी दयानन्द जी) के मन में ताबड़ तोड़ घर से भागने की तीव्रता पैदा करदी।

५ और यह भी कि उनके ये आधार कथन / लेख मेरे लिए ब्रह्म वाक्य हैं जिनसे किसी भी स्थिति में ये तिथियां कार्तिकीय (गुजराती) संवत् से बाहर की नहीं हो सकतीं।

हम आर्यो के लिए ऐसी चर्चा थोड़ी असहज करने वाली होती है कि हम लोग अपनी ही संस्था के संस्थापक तथा विश्व के अद्वितीय वेदवेत्ता और महान समाज सुधारक महर्षि दयानन्द की प्रामाणिक जन्मतिथि को लेकर असमंजस में हैं,

जनसामान्य आर्यसमाज जैसी बौद्धिक संस्था से ऐसी आशा नहीं करता। उसको महर्षि दयानन्द की वास्तविक जन्मतिथि को न केवल जानना है अपितु उसे यह निश्चित करना है कि इस सम्बन्ध में विद्वानों के विचार एक हो। और सभी आर्य लोग उसी तिथियों में उत्साह से मनायें। मैंने भी अपने बाल्यकाल में अनेक स्थानों पर अनेक पुस्तकों पर १८२४ ई. यह अंकित हुआ देखा है। इसके आधार पर ही सरकार के रिकार्ड में १२ फरवरी १८२४ ई. ही अंकित हुआ है, परन्तु हाल ही के कुछ वर्षो में आर्यसमाज के विद्वान डां ज्वलन्त शास्त्री जी ने ''महर्षि दयानन्द सरस्वती की प्रामाणिक जन्मतिथि'' नामक एक ऐसी पुस्तक (दस्तावेज) लिखी है। जिससे अब यह सभी के लिए निर्विवाद रुप से मानने योग्य है कि महर्षि दयानन्द का जन्म फाल्गुन कृष्ण दशमी संवत् १८८१ विक्रमी, तदनुसार १२ फरवरी सन् १८२५ ई. का है। और संवत् के आधार पर १८८१ पर तो कभी विवाद रहा ही नहीं क्योंकि स्वामी दयानन्द ने स्वयं लिखित आत्मचरित में संवत् १८८१ लिखा है।

उत्तर- टिप्पणी ४ - सच ये है कि कार्तिकीय संवत् १८८१ की ना समझी ही विवाद की जड़ बन गई। तत्कालीन समस्त बम्बई रेजीडेंसी में जिसका कि गुजरात प्रान्त एक हिस्सा था, कार्तिकीय विक्रम संवत् ही चलता था और आज के गुजरात में अब भी चलता है। कार्तिकादि या कार्तिकीय विक्रम संवत् १८८१ शनिवार, जो २३ अक्टोबर १८२४ से शुरू होकर वृहस्पतिवार, १० नवंबर १८२५ ई० तक का था। वही महर्षि के जन्म तिथि के सन्दर्भ में विचारणीय है न कि चैत्रीय विक्रम संवत् जो कि बुधवार, ३१ मार्च १८२४ शुरू हुआ था।

किन्तु बात यह है कि फाल्गुन कृष्ण दशमी संवत् १८८१ विक्रमी, महर्षि दयानन्द की जन्मतिथि है या श्रीमान् दार्शनिय लोकेश जी के अनुसार ऊहा की गई तिथि ''भाद्रपद शुक्ल नवमी'' संवत् १८८१ विक्रमी है, इसी बात पर निर्णय होना है। सन् १८२४ ई.नहीं है, सन् १८२५ ई. यह तो अब प्रमाणित हो चुका है। श्रीमान् दार्शनिय लोकेश जी ने अपने द्वारा ऊहा की गई महर्षि दयानन्द की जन्मतिथि को प्रामाणिक ठहराने के लिए जो तर्क दिए हैं। आइए उन तर्कों की प्रामाणिक और न्याय संगत समीक्षा करते हैं। हमारी समीक्षा का आधार भी महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित आत्म चरित और उनके द्वारा दिए गये पुना प्रवचन के व्याख्यान और उनके लिखित ग्रन्थ ही होंगे। और अन्य कोई जीवनी लिखने वाले प्रामाणिक विद्वानों के उद्धरण यदि दिये जायेंगे तो उसकी पृष्ठ संख्या और अध्याय आदि लिख देंगे।

पूर्वपक्ष (लोकेश जी) - आप सहित सभी विद्वानों ने एक ही प्रमुख गलती की है और वह यह कि जन्मतिथि की सोच को चौत्रीय या उत्तरभारतीय विक्रम संवत् के अनुसार आगे बढ़ाया है।

उत्तर टिप्पणी ५ - महर्षि ने न तो फाल्गुन की बात लिखी है और ना ही भाद्रपद की। उन्होंने केवल संवत् एवं स्थान विशेष (गुजरात) की बात की है। 'सैन्धवं आनय' न्याय के अनुसार भाद्रपद शुक्ल नवमी संवत् १८८१ की बात शत प्रतिशत सत्य है। मैं भी अगर एक गणित या सिद्धान्त ज्योतिष का विद्यार्थी नहीं होता तो मैं भी वही गलती करता जो उक्त सब ने की है। आपकी पुस्तक 'महर्षि दयानन्द सरस्वती की प्रामाणिक जन्म- तिथि का अवलोकन - आकलन करने पर पहली बात जो समझ आती है वह ये है कि १२ फरवरी १८२५ की जन्म तिथि की सिद्धि आपके सामने पहले ही स्पष्ट कर दी गयी और उसी को पुष्ट करने की जिम्मेदारी आपको दी गयी थी। उस जिम्मेदारी को आपने बहुत ही अच्छे से निभाने का ध्यान रखते हुए अन्यथा तर्कों को मन मस्तिष्क में आने ही नहीं दिया। सच ये है कि ऐसे में सत्य आपसे ओझल हो गया।

आपका यह कहना है कि पं लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, पं देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय, पं घासीराम, पं भगवद्दत्त, प्रो भीमसेन शास्त्री, आचार्य चमूपति, पं युधिष्ठिर मीमांसक, भवानी लाल भारतीय, प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, डा. कुशल देव शास्त्री, डा रामप्रकाश, डा ज्वलन्त शास्त्री प्रभृति विद्वानों को जो पता न लग सका आपको पता लग गया।

उत्तर टिप्पणी ६ - डॉ शास्त्री जी, आप सहित सभी विद्वानों ने जान बूझ कर कुछ गलत किया हो ऐसा कदापि नहीं है। आप- हम सभी महर्षि के प्रति समान निष्ठावान लोग हैं। मेरा ज्योतिष पक्ष प्रबल होने के कारण जो खास बात मेरे चिन्तन में आई वो आप सब के चिन्तन में नहीं आयी। बस इतना ही अन्तर है। अब भी लेकिन मैं अपने अनुभूत सत्य को समाज के सन्मुख रखूं , ये मेरा अधिकार है आप अन्य कोई भी उसको मानने या न मानने के लिए स्वतन्त्र हैं।

आपने अब तक महर्षि दयानन्द के जीवन पर कितना शोध, लिखित रुप में किया है? और महर्षि के ऐतिहासिक स्थलों पर भ्रमण करके कितनी ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त की है? यह नहीं बताया। आपने कहा है कि सभी विद्वानों ने चैत्रिय संवत् या उत्तर भारतीय संवत् मानकर इसे आगे बढाया है।

उत्तर टिप्पणी ७ - पंचाङ्ग सुधार मेरे जीवन का एक मात्र लक्ष्य है और उस पर मैं बहुत ही अग्र गण्य कार्य कर चुका हूँ। वर्ष २०१६ ई० के दिसंबर मास की 'तिरुमला धर्माचार्य सभा' में आमन्त्रित सभी १३८ विद्वानों में से एक विद्वान के नाते जगद्गुरु शङ्कराचार्यश्री श्री जयेन्द्र सरस्वती जी महाराज की साक्षी में यह बात घोषणा पूर्वक कह चुका हूँ कि 'वर्तमान में प्रचलित सारे ही पंचाङ्ग अशुद्ध हैं।' आजकी आपकी परिवर्तित धारणा के अन्तर्गत आप इसे मेरा दम्भ समझें या अध्ययन पूर्वक अर्जित आत्मविश्वास, ये सब आप पर निर्भर करता है। महर्षि जी की जन्म तिथि पर शोध करना मेरा विषय नहीं रहा है। पंचाङ्ग में जन्म तिथि का उल्लेख करने के लिए जो उपलब्ध तिथि थी, वही लिखता भी रहा हूँ। किन्तु कुछ वर्ष पूर्व आदित्य मुनि जी ने ज्योतिष गणना के आधार पर महर्षि की जन्म तिथि का आकलन करने का अनुरोध मेरे सामने रखा। तभी मैंने इस सन्दर्भ की और खास तौर पर आपकी पुस्तक का अवलोकन किया। ज्योतिष गणित करने में सबसे पहले जन्म स्थान और वहां के पंचाङ्गीय सिद्धान्त को समझना आवश्यक होता है। बस, यहीं से अन्तर की बात शुरू हो गयी। मुझे वो दृष्टि मिल गयी जो आप सब को नहीं मिली थी। यह बात अलग है कि अगर आचार्य विश्वश्रवा: जी धर्मार्य सभा के द्वारा पहले ही लिए गए निर्णय (१२ फरवरी १८२५) की तरफ न आकर्षित करते तो आप स्वयं भी 'डॉ० भवानी लाल भारतीय अभिनन्दन ग्रन्थ' में भारतीय जी के ग्रन्थों की समीक्षा लिखते समय तक भाद्र शुक्ल ९ संवत्त १८८१ को ही उपयुक्त समझ रहे थे। आचार्य श्री के शब्दों की सीमा रेखा ने आपको अनुबन्धित करके रख दिया।

क्या महर्षि दयानन्द ने संवत् १८८१ लिखते समय ये बताया है कि मेरे संवत् लिखने का तात्पर्य गुजराती संवत् से है? तब आपको कैसे पता लगा कि स्वामी दयानन्द ने (संवत् १८८१ के वर्ष में मेरा जन्म हुआ यह लिखा है) तो यह गुजराती संवत् की बात है?

उत्तर टिप्पणी ८ - आश्चर्य की बात ये नहीं है कि मुझे पता लग गया कि महर्षि का जन्म कार्तिकीय या गुजराती संवत् में हुवा अपितु आश्चार्य ही नहीं कष्ट तो इस बात का है कि महर्षि के यह लिखने के बाद भी कि, ''संवत् १८८१ के वर्ष में मेरा जन्म दक्षिण गुजरात- - -हुवा। आप को उनके द्वारा अलग से गुजराती संवत् न लिखे जाने की भूल नजर आ रही है। उनके द्वारा अलग से 'गुजराती संवत्' लिखने की तो आवश्यकता ही नहीं थी। हमारे लिए उनके जन्म संवत् 'कार्तिकीय विक्रम' लेना एक स्वयं सिद्ध तथ्य है।

महर्षि दयानन्द स्व लिखित आत्मचरित लिखते समय कितने वर्ष के थे? क्या उस आयु में वे गुजरात में रहते थे ? क्या उस समय में वे गुजराती भाषा में बोलचाल करते थे? गुजरात प्रदेश की कौन सी बात का उनके जीवन पर प्रभाव था ? बोली का? खान पान का ? भाषा का ? उच्चारण का ? प्रान्तता का? या गुजरात का मोह था?

उत्तर टिप्पणी ९- मनुष्य अपनी जन्म तिथि जो उसको प्रथम स्मृति में उसके माता पिता से ज्ञात हो जाती है और वह उसको जीवन भर उसी रुप में याद रखता है। भले ही वो बाद के किसी काल खण्ड में कहीं भी हो, कितनी भी आयु का हो और तब तक कितनी भी और कैसी भी भाषा बोलता हो। हम सब को सोचना चाहिए और एक बहुत ही स्वाभाविक सी बात भी है कि महर्षि जन्मकाल को उस वक्त के और वहां के उपलब्ध और प्रचलित पंचाङ्ग के अनुसार ही तो जाना गया होगा। तब अगले वर्ष का और लगातार २१वें वर्ष तक के सभी जन्म दिन तदनुसार ही तो मनाये गए होंगे। (तनिक विस्तार के लिए उत्तर टिपणी १० देखें)।

इससे यह पता लगता है कि सन् १८७९-८० ई. में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जब अपना आत्मचरित लिखा था तब उनकी आयु ५४-५५ वर्ष की थी। उस समय वे दो भाषा में ही अपने पत्र व्यवहार आदि करते और विज्ञापन आदि छापवाते थे। जब वे सारे कार्य संस्कृत या हिन्दी में कर रहें हैं तो वे गुजराती वाले संवत् का प्रयोग क्यों करेंगे? जबकि ५४-५५ वर्ष की आयु में एक अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका ''दि थियोसोफिस्ट'' को अपना आत्म चरित लिखकर भेजने वाले स्वामी दयानन्द गुजराती संवत् क्यों लिखेंगे? जबकि वे राष्ट्रीय संवत् लिखने में सिद्ध हस्त हैं। वे गुजराती संवत् नहीं लिखते थे राष्ट्रीय या चैत्रीय संवत् लिखते इसका प्रमाण हम आगे की समीक्षा में लिखेंगे।

उत्तर टिप्पणी १० - बड़े कष्ट के साथ लिखना पड़ रहा है कि ये सब ऊल जलूल तर्क हैं। आप जैसे वैदिक विद्वान व्यक्ति को शोभनीय नहीं हैं। किसी भी व्यक्ति विशेष के लिए मैंने ये नहीं कहा है कि अमुक व्यक्ति ज्योतिष नहीं जानता है। मैंने ये कहा है कि महर्षि की जन्म तिथि की जानकारी लेने वाले सभी विद्वानों से (आप सहित) यही खास कमी रही है कि उनका ध्यान १८८१ के कार्तिकेय संवत् होने की तरफ नहीं गया। अन्तिम रूप से निर्णायक या अनुसन्धानक होने के कारण आप की यही सबसे बड़ी और खास जिमेदारी बनती थी के आप पंचाङ्ग पद्धतियों का ज्ञान/ ध्यान रखते। उसके लिए बाद में या पहले भी, महर्षि का ये लिखना बिलकुल भी आवश्यक तो क्या स्वाभाविक भी नहीं था कि १८८१ गुजराती या कार्तिकेय संवत् है। महर्षि का इतना ही कहना पर्याप्त एवं आवश्यक था और है कि , ''मेरा जन्म संवत् १८८१ के वर्ष में गुजरात प्रदेश के में हुवा। '' जब समस्त गुजरात में चैत्रीय विक्रम संवत् होता ही नहीं था, आज भी नहीं है तो महर्षि के जन्म का पहला संज्ञान उनके माता पिता क्या चैत्रीय संवत् से ले सकते थे? फिर माता पिता ने उनका पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा आदि जन्म दिन (वर्षफल - जन्म पत्र परम्परा का यह शब्द, मैं खास उद्देश्य से लिख रहा हूँ) किस तिथि से मनाया होगा? पांच या छः वर्ष का होने पर उनको जब अपनी जन्म तिथि का संज्ञान होने लगा होगा तो क्या उत्तर भारत के पंचाङ्गों के हिसाब से हुवा होगा? हो सकता है कि २० -२१ वर्ष की आयु का होने तक तो उनको ये भी न पता रहा होगा कि हम गुजरातियों की संवत् गणना अलग है और उत्तर भारतीयों की अलग।

आपका स्वयं जन्म फाल्गुन कृष्ण नवमी का है तो तो क्या जब आप गुजरात में हों और वहाँ आप को जन्म तिथि कोई पूछ बैठे तो तात्कालिक देश काल अनुसार आप अपनी जन्म तिथि को गुजराती में आकलन करके माघ कृष्णा नवमी बताएँगे? और अगर नहीं बतायंगे तो क्या इसका आप की विद्वता और राष्ट्रीयता के प्रति अटूट निष्ठा पर दुष्प्रभाव पड़ जाएगा? (आगे उत्तर टिप्पणी १७ सन्दर्भित)

पूर्वपक्ष (लोकेश जी) - महर्षि के बारे में जन्मतिथि से लेकर के गृह त्याग पर्यत की तिथियों का उल्लेख केवल गुजराती

क्रमशः.....५ पर

पृष्ठ.....४ का शेष.....

पंचाङ्गों के हिसाब से होना चाहिए, किसी भी अन्य क्षेत्रीय पंचाङ्गों से नहीं।

उत्तर टिप्पणी ११ - १००% से भी अधिक सत्य बात। संवत् १८८१ से संवत् १९०३ तक की किसी भी तिथि पर अनिवार्य रूप से यही नियम लागू होता है। अन्य काल खण्डों में ये प्रतिबद्धता न तो है ही और न हो सकती।

समीक्षा - महर्षि दयानन्द के जन्मतिथि से लेकर गृहत्याग पर्यन्त की तिथियों गणना गुजराती पंचांग के आधार पर क्यों होनी चाहिए? क्या स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऐसा कहा है? क्या किसी जीवन चरित्र लिखने वाले विद्वान ने ऐसा कहा है? क्या महर्षि दयानन्द ने ऐसा कोई संकेत दिया है? तो फिर ऐसा निरर्थक कार्य क्यों करें? उनकी तो वैदिक कहिये या राष्ट्रीय कहिए एक ही गणना थी। जो उस समय से लेकर आज तक प्रचलित है।

उत्तर टिप्पणी १२ - ये सब दोषपूर्ण चिन्तन की बातें है। ज्योतिष या पंचाङ्ग से प्रभावित व्यावहारिक पक्ष से मेल नहीं खाती हैं। ये कहना कि उनकी तो वैदिक कहिये या राष्ट्रीय कहिए एक ही गणना थी सही तो है परन्तु गृह त्याग के बाद के दयानन्द पर लागू होती है, २१ वर्ष तक के धनेश त्रिवेदी जी पर नहीं। इस पर स्वयं स्वामी जी या युवा मूल शङ्कर के कुछ भी कहने की कुछ आवश्यकता नहीं।

चैत्रीय गणना का उपयोग महर्षि दयानन्द सरस्वती अपने पत्र व्यवहार में करते थे। महर्षि दयानन्द ने जिस वर्ष अपना आत्मचरित्र लिखा था वह सन् १८७९ ई. था और संवत् १९३५ विक्रमी था। यदि महर्षि दयानन्द उस वर्ष तक गुजराती में ही पंचांग लिखा करते थे तो सन् १८७८ और १८७९ में उनके अन्य पत्रों पर भी उसकी छाप होनी चाहिए। परन्तु ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता, परन्तु वे चैत्रीय विक्रम संवत् को ही मानते और लिखते थे इसके सारे प्रमाण उपलब्ध हैं -

उत्तर टिप्पणी १३ - फिर तर्क के लिए तर्क?। महर्षि दयानन्द ने जिस वर्ष अपना आत्मचरित्र लिखा था वह सन् १८७९ ई. था (मैंने मान लिया) और संवत् १९३५ विक्रमी था (यह भी मैंने मान लिया), ऐसा आप कह रहे हैं तो फिर ये भी आपको पता होना चाहिए कि अगस्त १८७९ में गुजराती संवत् १९३५ ही तो था। यद्यपि मुझे इस से कुछ प्रयोजन नहीं है क्योंकि मेरा प्रतिबन्ध तो केवल स्वामी जी के गृहत्याग के वर्ष तक की तिथियों तक ही सीमित है। आप बारबार गृहत्यागोपरान्त के लिए उस कल्पित आशय को ले आ रहे हैं जो कि हमारा है ही नहीं।

ऐसे ही सैकड़ों पत्र हैं। जिन्हें स्वामी दयानन्द ने अपने हाथों से लिखा है। जिनमें विक्रम संवत् और दिनांक अंकित है। पर इनमें कहीं पर भी गुजराती संवत् तो नहीं मिलता है। फिर भी कोई कहे स्वामी दयानन्द ने जो जीवनी में संवत् १८८१ लिखा है वह गुजराती संवत् है। किस आधार पर माने कि स्वामी दयानन्द गुजराती में संवत् लिखते थे? जबकि प्रत्यक्ष प्रमाणों से यह बात सिद्ध होती है कि वे चैत्रीय या राष्ट्रीय संवत् लिखा करते थे। और दूसरी बात स्वामी दयानन्द द्वारा लिखीत एक ही जीवनी जो उन्होंने अपने ही हाथों से लिखी है उनके शुरु के कुछ संवत् (वर्षो) की गिनती गुजराती में करना और शेष संवत्सरों की गिनती चैत्रीय में करना, क्या यह हास्यास्पद नहीं है? ऐसा तर्क आप ही दे सकते हैं।

उत्तर टिप्पणी १४ - आदरणीय शास्त्री जी, चैत्रीय संवत् ना तो स्वामीश्री के जीवन काल में राष्ट्रीय संवत् था और ना ही आज है। आपकी सूचना मात्र के लिए लिख दूँ कि आज (ईस्वी १९५२ से) भारत का राष्ट्रिय संवत्त शक संवत् है जो कि वर्तमान में १९४६ है। जो चार तिथियां आपने उदुधृत की हैं वे सारी तिथियां गृह त्याग के भी ३२ वर्ष बाद की हैं। अस्तु सारे उद्धरण अनावश्यक और जन्म तिथि को निर्धारित करने की दृष्टि से असन्दर्भित हैं। उपरोक्त १, २, ३ और बिंदु ४ के बारे में मेरा कहना है कि ये सब सम्यक तर्क नहीं हैं और ज्योतिष की दृष्टि से संवाद के प्रति एक असावधान मस्तिष्क की उपज हैं। सभी लोग इस बात के प्रति सजग रहें कि गृह त्याग के बाद के किसी भी काल में महर्षि किस पंचाङ्ग का उपयोग करके तिथि लिख रहे हैं, इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन घर छोड़ने से पूर्व की किसी भी तिथि को वे गुजराती पंचाङ्ग के अतिरिक्त की तिथि से लिख ही नहीं सकते थे।

पूर्वपक्ष (लोकेश जी) - जहाँ तक मैं समझता हूँ कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की जन्मतिथि का यह विषय शास्त्रार्थ का विषय नहीं है अपितु अधिक से अधिक विमर्श पूर्वक अनुभव करने का विषय है या महर्षि की वचन प्रमाण्यता के अन्तर्गत सभी विद्वानों के द्वारा एक मंच पर आकर पुनर्विचार का विषय है। आप क्या समझते हैं उससे कोई तथ्य निर्धारित नहीं होगा। किसी भी विषय को प्रतिपादित करने के लिए, शास्त्रार्थ एक स्वस्थ परम्परा है। खासकर, जब कोई दुराग्रह करे, अपनी ही बात को सिद्ध कराना चाहे, स्वयं घोषित तथ्यों को ही सर्वोपरि माने तो शास्त्रार्थ करना ही होता है। परन्तु आप कहें कि ''फाल्गुन कृष्ण दशमी'' को जन्मतिथि मानने वाले लोग पुनर्विचार करें। मैं जो ''भाद्रपद शुक्ल नवमी'' मानता हूँ वही सही जन्मतिथि है। तो फिर यह कैसा संवाद हुआ? आपके कहे अनुसार यदि महर्षि के वचन के आधार पर ही निर्णय होना चाहिए तो हम भी यही चाहते हैं कि महर्षि के वचन ही अन्तिम प्रामाण माने जायें।

उत्तर टिप्पणी १५ - मैं नहीं कहता, और न कभी कहा है कि मैं बहुत बड़ा विद्वान् हूँ और सब लोग मेरी ही बात मानों। गत लगभग ४५ -४६ वर्षो से मैं ज्योतिष का एक विनम्र विद्यार्थी हूँ। गणित ज्योतिष स्वयं में प्रत्यक्ष प्रमाण से कम नहीं होता है और मैंने ऋषि की जन्म तिथि २० सितम्बर १८८१ को ज्योतिषीय गणित से सिद्ध पाया है। मेरे लिए तो यही प्रामाणिक है और जब भी कहूंगा यही कहूंगा। इसीलिये विमर्श की बात कही है। लोग या तो मेरी गणितीय सिद्धि के विमर्श को पूछें और समझें या अपना विमर्श रखें। अभी आपने देखा कि मैंने भारतभर के पंचाङ्गकारों, ज्योतिषियों, कर्मकाण्डियों आदिके सामने एक चुनौती रख दी है कि कोई मुझे वेद, पुराण और सिद्धान्त ग्रन्थों से एक भी प्रमाण दे देवे जिसमें गणित सिद्ध वसन्त सम्पात के बाद चैत्र शुक्ल प्रतिपदा या श्री राम नवमी को सिद्ध किया जा सके। मैंने २५००० रुपये की श्रद्धा भेंट भी रखी हुयी है। सभी सम्पर्क पंचाङ्गकारों, ज्योतिर्विदों और अन्य भी विविध विद्वानों को मेरा ये सन्देश गया है। एक ने भी अभी तक मेरी चुनौती स्वीकार नहीं की है। तो ये सब तो मेरा अपना आत्म विश्वास है। आपको इस से क्यों परेशानी हो रही है? आप शायद इस पर अद्यतन नहीं हैं कि आप और आदित्य मुनि जी के परस्पर जो शास्त्रार्थ बुलाया गया था उसको भी बाद में शास्त्रार्थ न कह कर संवाद कहा गया और इस पर स्पष्टीकरण भी दिया गया कि यह एक संवाद था। क्या आप कहेंगे कि ऐसा क्यों कहा गया और क्यों आपने इस बात पर अपना प्रतिरोध व्यक्त नहीं किया? सिवाय प्रचलन और प्रचलित पंचाङ्गों के सम्पूर्ण बम्बई रेसीडेंसी क्षेत्र में कार्तिकीय संवत् प्रचलन में था। आज कहाँ कहाँ कार्तिकीय संवत् प्रचलन में है इसकी ठीक ठीक जानकारी नहीं है किन्तु आज के गुजरात में तो है। प्रचलन की इस बात का कोई शास्त्र नहीं है। जिस चर्चा के मूल में कोई शास्त्र ही नहीं तो फिर उसके लिए शास्त्रार्थ कैसा?

पूर्वपक्ष (लोकेश जी) - सामान्य और सहज बुद्धि से भी समझा जा सकता है कि जिन महर्षि का जन्म गुजरात में हुआ और जो २१/२२ वर्षो तक वहीं पर पले और बड़े हुए, वे अपने जन्म संवत् और घर से निकलने के संवत् को उत्तरभारतीय ढंग की संवत् गणना से क्यों कहेंगे?

समीक्षा - राष्ट्रीय भावापन्न महापुरुष जो समुचे आर्यावर्त के लिए एक भाषा, एक संस्कृति की बात करते हैं, वे अपने पंचाग व्यवहार को एक प्रान्तीय पचांग के आधार पर व्यवहार क्यों करेंगे? जो भारतीयों के सोलह संस्कारों में और कर्मकाण्ड आदि में एक रुपता के प्रबल समर्थक हैं, इसी एक रुपता के लिए जिन्होंने ''संस्कार-विधि'' लिखी और पंच महायज्ञ विधि लिखी। जो किसी एक प्रान्त या रियासतों की भाषा को समुचे आर्यावर्त के लिए उपयोगी नहीं मानते वे स्वामी दयानन्द सरस्वती गुजराती पचांग के आधार पर अपने व्यवहार क्यों करेंगे?

उत्तर टिप्पणी १६ - पहले ही स्पष्ट कर चुका हूँ कि अपनी जन्म तिथि को कोई भी, मनुष्य, कभी भी, तात्कालिक देश काल भेद के अनुसार परिवर्तित करके नहीं कहता है। आपका ये कहना कि ,'' राष्ट्रीय भावापन्न महारुपुरुष जो समुचे आर्यावर्त के लिए एक भाषा, एक संस्कृति की बात करते हैं, वे अपने पंचाग व्यवहार को एक प्रान्तीय पचांग के आधार पर व्यवहार क्यों करेंगे?'' देश काल और परस्थिति सन्दर्भ में अत्यधिक अयथार्थ है। ये बात 'प्रबुद्ध देव दयानन्द जी' पर लागू होती है किन्तु 'युवक दयानन्द जी' पर नहीं।

महर्षि दयानन्द का जन्म गुजरात में हुआ है और वे २१-२२ वर्ष तक गुजरात में पले और बडे हुए हैं तो वे गुजराती में पंचाग का प्रयोग करते होंगे। यह अपने आप में किसी सन्यासी, वितराग महापुरुष के लिए कितनी हास्यास्पद बात हो सकती है, जबकि वे आत्मकथा लिख रहें हैं तब वे ५४ वर्ष के है, कमाल है! अब तक महर्षि दयानन्द स्वयं अपने व्यवहार में गुजरातीयता को छोड़ नहीं पाएं हैं? जबकि उनके पत्र व्यवहारों से तो ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। स्वामी दयानन्द ने अपनी आत्मकथा को सन् १८७९ ई. में लिखा है। तब उनकी आयु कोई २२ वर्ष की नहीं थी ५४ वर्ष की थी। इन महाशय (लोकेश जी) के अनुसार स्वामी दयानन्द २२ वर्ष तक गुजरात में पले बडे तो वे जीवन के ५४ वें वर्ष में भी गुजराती में ही पंचाग और विक्रमी संवत् का प्रयोग करते रहे होंगे। तो ३२ वर्षो से संपूर्ण आर्यावर्त में भ्रमण करके संस्कृत और हिन्दी में बातचीत कर रहें तो राष्ट्रीय पंचांग का प्रयोग क्यों नहीं करते होंगे?

उत्तर टिप्पणी १७ - ये भी सम्यक तर्क नहीं है। कहीं पर भी मेरा ऐसा लिखा बता दीजिये कि, ''महर्षि गुजराती संवत् का ही प्रयोग करते थे।'' अपने आप मेरी तरफ की बात कह रहे हैं और अपने आप ही उसकी समीक्षा कर रहे हैं। शास्त्री जी आप जैसे विद्वान को ऐसा व्यवहार-----। कम से कम भविष्य के लिए इसका संज्ञान ले लीजिये। एक बार फिर से सुन लीजिये कि महर्षि जी की गृह त्याग समय तक की तिथियों का उल्लेख जो भी करेगा उसको गुजराती पंचांग या कार्तिकीय विक्रम संवत् के अनुसार ही करना होगा। न जन्म का स्थान बदल कर कह सकते और ना ही दिन -दिनाङ्कादि या जन्म की चान्द्र अथवा सौर तिथि को। कोई साधू, सन्त, नेता आदि कुछ भी क्यों न हो, ये प्रतिबद्धता सब पर सामान लागू होती है। ये जन्म की सूचना के साथ साथ मानवीय मनोविज्ञान का पक्ष भी है। आप अपने आप को ही देख लीजिये, अपनी पुस्तकों में जब आप अपनी जन्म तिथि देते हैं तो ' रूपहरी , ढाका, पूर्वी चम्पारण, बिहार ' लिखना नहीं भूलते। क्या इसमें आपकी जन्म तिथि के साथ आपके जन्म स्थान की जानकारी नहीं है? (उत्तर टिप्पणी १० सन्दर्भित)।

स्वामी दयानन्द जैसे सन्यासी अपना परिचय देने में संकोच करते हैं किसी एक स्थानीय संस्कृति वेशभूषा से अपने आप को जोड़कर नहीं रखते वे तो वैदिक और आर्यावर्तीय सार्वदेशिक और सार्वभौमिक मान्यताओं और संस्कृति की पृष्ठ पोषक हैं फिर भी उनके लिए यह कहना कि २२ साल तक गुजरात में पले बढे तो जीवन के ५४ वर्ष में गुजराती पंचांग का ही उपयोग करते थे कितनी निराधार और तथ्यहीन बात हैं। इससे ऋषि प्रेमी स्वयं समझ सकते हैं।

उत्तर- टिप्पणी १८-ये तर्कों का पिष्टिपेषण मात्र है। उत्तर टिप्पणी १७ में दिया जा चुका है। जो आपको निराधार और तथ्यहीन बात लग रही है वह तो मैंने कही ही नहीं है। घर से निकलने के बाद के काल में कब वे किस पंचाङ्ग को प्रयोग में लाते थे इस पर तो मैं क्या कोई भी कुछ नहीं कह सकता है। शायद तर्क प्रवाह में बहते बहते आप कहीं के कहीं पंहुच जा रहे हैं, भूल जाते हैं कि बात जन्म तिथि की हो रही है। जन्म पत्रिका गणित करने वालों के लिए एक आदर्श ये भी होता है कि जन्म पत्र निर्माण के लिए स्थानीय पंचांग जन्म स्थान के अनुसार ही गणित किया जाए। यह बात मैं इसलिए कह रहा हूँ कि ज्योतिष का गणित भाग एक वास्तविकता है। चाहे वो जन्म की ग्रह स्थिति की गणना ही क्यों न हो। आज बहुत से विद्वान इस सत्य को अनुभव कर चुके हैं कि काल गणना का ग्रह नक्षत्र आदि आधारित आधार, साक्षात 'कालेश्वर' की अपनी लेख है। उसे बदला या मिटाया नहीं जा सकता।

पूर्वपक्ष (लोकेश जी) - उनका यजुर्वेद भाष्य मन्त्र २६/१४ देखें, मासाः को वे कार्तिकादि कहकर बता रहे हैं। चैत्र शुक्ल पंचमी को हुए आर्य समाज स्थापना और स्थापना दिन की सूचना को महर्षि कार्तिकीय संवत् १९३१ कहकर ही देते हैं (देखें श्री मोहन कृति आर्ष पत्रकम् शक संवत् १९४६ का पहला अन्तिम कवर पृष्ठ)। समीक्षा - आपने यजुर्वेद के एक मन्त्र को ढूंढ लिया जिसमें महर्षि दयानन्द ने मासाः शब्द का पदार्थ कार्तिक आदि महीने किया है।

किन्तु क्या आपने यह विचार किया? कि महर्षि दयानन्द क्या अन्य मन्त्र में आए हुए मासाः शब्द के लिए भी कार्तिक आदि लिख रहें है अथवा चैत्र आदि लिख रहें हैं। परन्तु आपको आपके काम के लिए एक उदाहरण चाहिए था सो आपने यही उठा लिया। और उससे अधिक सोचने और परीक्षण करने जेहमत न उठाई।

उत्तर टिप्पणी १९ - आप अतिउत्साह में मेरे लिखे का ठीक से ध्यान नहीं रख पाए हैं। यव २६/१४ में महर्षि जी ने संवत्सर चक्र के अनुसार 'कार्तिक आदि' कहा है और बहुत ही सही कहा है। क्योंकि संवत्सर चैत्रीय पद्धति में चैत्र मास से और कार्तिकादि पद्धति में कार्तिक मास से गिना जाता है। इसीलिये उनका कार्तिक आदि कहते हुए मासों के लिए कथन स्वाभाविक है। ऋतुक्रम के अनुसार दोनों ही पद्धतियों में वसन्त ऋतु पहली ऋतु है तो चैत्र मास प्रथम मास है। सौर गणना में अलग अलग पद्धतियां नहीं हैं। मेरा उद्देश्य ये बात व्यक्त करने से है कि कोई भी गुजराती और निकटवर्ती मूल के लोगों के अतिरिक्त व्यक्ति 'कार्तिक आदि' या 'कार्तिकादि' कहते हुए मास गणना की बात कर ही नहीं सकता। अधिक कुछ नहीं। रही बात जो लोकेश जी ने लिखी है। आर्यसमाज की स्थापना और सूचना देने की उसके लिए मैं उनके सैकड़ों पत्र और विज्ञापन का उदाहरण दे सकता हूँ। जिससे यह स्पष्ट है कि वे चैत्र आदि विक्रम संवत् का ही उपयोग करते थे। जैसा कि मैंने उपरोक्त समीक्षा में कई पत्रों के उदाहरण दिये हैं।

उत्तर टिप्पणी २० - जी, हाँ। आप ही क्या मैं भी दे सकता हूँ, सैकड़ों तो नहीं परन्तु 'कुछ तो' दे ही सकता हूँ। कई बार चैत्र आदि कहने में गुजरातीपन का स्पर्श नहीं मिलता। पर एक बार भी वे अगर कार्तिक आदि कहें तो उसमें गुजरात का स्पर्श मिलता है , ये मेरा तर्क है। व्यक्ति की भाषा में ऐसे सूचक होते हैं जो उसके मूल परिवेश की कहीं न कहीं लेकिन पहचान बता ही देते हैं। यहाँ भले हे मेरे प्रतिपक्ष भाव के कारण आप स्वीकार न करें किन्तु ये हम सब का अनुभव है। गृह त्याग कर लेने के बाद महर्षि के द्वारा दिनांकन देने का कोई एक ही नियम नहीं दीखता। मैंने किसी पुस्तक में किसी अन्य विद्वान् का लिखा भी पढ़ा था कि महर्षि जहाँ रहे हैं वहीं के पंचाङ्गों का प्रयोग करते दीखते हैं। यही मैंने भी देखा है। आपका यह कहना कि, ''वे चैत्र आदि विक्रम संवत् का ही उपयोग करते थे'' सही नहीं है।

पूर्वपक्ष (लोकेश जी) - आगे वे (विश्वस्त सूचनानुसार) शनिवार, ३० अक्टूबर, १८७५ ई० (कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा) को अहमदाबाद में कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ होने वाले नववर्ष पर व्याख्यान भी देते हैं।

समीक्षा - ऐसे भाषणों की विश्वस्त सूचना आपको ही प्राप्त हो सकती है। किन्तु यदि स्वामी जी ने कार्तिक महीने को वर्ष का पहीला महीना मानकर और कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को गुजराती नववर्ष मानकर उसके ऐतिहासिक महत्व आदि पर अहमदाबाद में कोई महत्व पूर्ण व्याख्यान दिया भी है तो इससे यह कहाँ सिद्ध होता है कि वे गुजराती संवत् का ही प्रयोग करते थे?

उत्तर टिप्पणी २१ - ''ऐसे भाषणों की विश्वस्त सूचना आपको ही प्राप्त हो सकती है।'' इस उलाहना कथन से लगता है कि जो तथ्य आपकी जानकारी में नहीं होंवें वह किसी अन्य की जानकारी में भी नहीं हो सकते, ऐसा आप समझे हुए हैं। । स्पष्ट कर दूँ कि 'दयानन्द दिवाकर अध्या ८, मुम्बई (१८७५ ई०) प्रकरण के अन्तर्गत पृष्ठ ४२५ पर इसका उल्लेख है। ये विषय हमारा 'साध्य' ही नहीं है और ना ही रहा है कि वे गुजराती संवत् का ही प्रयोग करते थे। हमारी इस सुनिश्चिति को अब आप हमेशा के लिए संज्ञान में ले लें।

समग्र बंबई रेसीडेंसी (तब गुजरात भी उसी का हिस्सा था) में कार्तिकीय विक्रम संवत् का पंचाङ्ग चलता था (गुजराती नाम का कोई पंचाङ्ग नहीं) और यही कारण है १० अप्रैल १८७५ की चैत्र शुक्ल पंचमी को आर्य समाज स्थापना की सूचना के पत्र में उन्होंने ११ अप्रैल १८७५ यानी चैत्र शुक्ल षष्ठी, संवत् १९३१ का उल्लेख किया है। इसको उलाहना बुद्धि से नहीं, एक उत्तरदायी और गम्भीर चिन्तन पूरक समझने की आवश्यकता है। इस से अब आप ये नहीं कह सकते कि महर्षि ने अपने गृह त्यागोपरान्त के जीवन में गुजराती संवत् का प्रयोग किया ही नहीं है या नहीं करते थे।

आर्यसमाज की स्थापना के लिए चैत्रीय संवत् का चयन क्यों किया था? कार्तिकीय को नव संवत्सर मानकर उसमें ही आर्यसमाज की स्थापना कर सकते थे? परन्तु ऐसा कुछ भी नही है।

उत्तर टिप्पणी २२ - ऐसा लगता है कि आपको चैत्रीय/कार्तिकीय संवत् का विचार ही स्पष्ट नहीं है। 'चैत्र शुक्ल पंचमी - १० अप्रैल १८७५' यह तिथि यानी 'चैत्र शुक्ल पंचमी' चैत्रीय विक्रम संवत् की अलग और कार्तिकीय विक्रम संवत् की अलग अलग होती हो, ऐसा तो है ही नहीं। शुक्लादि व्यवस्था में (जो कि उत्तर भारत में नहीं है) शुक्ल पक्ष और उसकी तिथि गणना चैत्रीय और कार्तिकादि संवत् गणना में एक ही होती है।

आर्य बन्धुओं! आप स्वयं विचार करें कि यदि स्वामी दयानन्द कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को नववर्ष मानते थे, तो उन्होंने

क्रमशः.....७ पर

स्वामी दर्शनानंद सरस्वती

-आनन्द आर्य

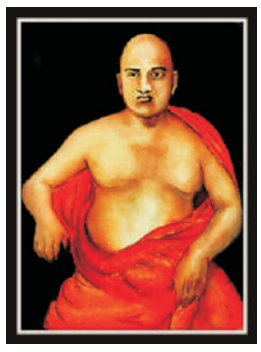

११ मई आर्य जगत के एक उद्भट विद्वान, अद्भुत तार्किक शास्त्रज्ञ विद्वान, शास्त्रार्थ महारथी गुरुकुल पद्धति की शिक्षा के प्रचारक स्वामी दर्शनानंद सरस्वती जी की पुण्यतिथि है।

स्वामी दर्शनानंद जी का जन्म माघ कृष्णा दशमी संवत् १९१८ विक्रमी (१८६१ ई०) को हुआ था। पंजाब के लुधियाना जिले के जगरांव नामक कस्बे में पंडित रामप्रताप नामक एक कुलीन ब्राह्मण उनके पिता थे। बालपन में उनका नाम कृपाराम था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा फारसी तथा संस्कृत में हुई। उन्होंने फारसी के प्रसिद्ध ग्रंथ ''गुलिस्तां ''तथा ''बोस्तां'' का अध्ययन किया ,''सिद्धांत कौमुदी'' भी पढी। उनका विवाह ११ वर्ष की अल्पायु में ही कर दिया गया।

कृपाराम के पिता एक कारोबारी व्यक्ति थे, परंतु कृपाराम का मन व्यापार-व्यवसाय में नहीं लगता था। उनमें वैराग्य की वृत्ति तो स्वभाव से ही थी। इसलिए बिना किसी को सूचना दिए वह एक दिन घर से निकल पड़े। अमृतसर में उन्होंने ऋषि दयानंद के व्याख्यान सुने तो उन पर दयानंदीय विचारधारा का प्रभाव पड़ने लगा। स्वयं स्वामी दर्शनानंद के कथनानुसार उन्होंने ऋषि दयानंद के ३७ व्याख्यान सुने थे। पंडित कृपाराम ने आगे चलकर काशी में पंडित हरीनाथ से दर्शनों का विधिवत अध्ययन किया था। काशी में रहते हुए ही आप ने अनुभव किया कि संस्कृत के शास्त्र ग्रंथ प्रायः सुलभ नहीं हैं। छात्रों को उन्हें प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई होती है। सस्ते मूल्य पर शास्त्र ग्रंथ उपलब्ध कराने की दृष्टि से उन्होंने काशी में ''तिमिरनाशक यंत्रालय'' नामक एक मुद्रणालय स्थापित किया। व्याकरण दर्शन आदि के अनेक ग्रंथ छपाकर उन्होंने छात्रों को सस्ते मूल्य पर उपलब्ध कराए।

१८९३-९४ में आपने पंजाब के नगरों में धर्म प्रचारार्थ भ्रमण किया। १८९९-१९०० में वे आगरा में रहे। उन दिनों नियमित रूप से ट्रैक्ट लिखना, व्याख्यान देना और शंका समाधान करना तथा अन्य मतावलंबियों से शास्त्रार्थ करना पंडित कृपाराम का नित्य का कार्यक्रम था।

१९०१ में पंडित कृपाराम ने राजघाट (गंगातट) पर स्वामी अनुभवानंद से संन्यास की दीक्षा ली और इसके बाद वे कृपाराम से स्वामी दर्शनानंद बन गए।

आर्य समाज के शास्त्रार्थ महारथियों में स्वामी दर्शनानंद का स्थान शीर्षस्थ है। स्वामी जी ने अनेक शास्त्रार्थ किए उनमें एक बहुत प्रसिद्ध शास्त्रार्थ था -आर्य समाज के ही एक अन्य मूर्धन्य विद्वान पंडित गणपति शर्मा जी से जो वृक्षों में जीवों की विद्यमानता के विषय पर था। यह शास्त्रार्थ ज्वालापुर महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव के अवसर पर ८ अप्रैल १९१२ को हुआ था। स्वामी जी वृक्ष में जीव की सत्ता नहीं मानते थे।

उनके कुछ प्रसिद्ध शास्त्रार्थ इस प्रकार हैं -

(१) काशी में सनातनी विद्वान महामहोपाध्याय से देव शब्द के अर्थ पर।
(२) आगरा में मौलवी अब्दुल हमीद से वेद तथा कुरान में कौन सी पुस्तक इलहाम ईश्वरीय ज्ञान है, विषय पर।
(३) १९०४ में पादरी ज्वाला सिंह से।
(४) बिजनौर में पंडित भीमसेन शर्मा तथा पंडित ज्वाला प्रसाद मिश्र से प्रायश्चित विषय पर।
(५) १९६२ विक्रमी में धामपुर जिला बिजनौर में सनातनी विद्वान पंडित बिहारी लाल से श्राद्ध विषय पर।
(६) देवरिया में आर्य समाज के अनेक पंडितों का सहयोग लेकर मुसलमान मौलवियों से।
(७) पेशावर में सनातनी पंडित जगत प्रसाद से।
(८) १९१३ के जून माह में अजमेर के जैन विद्वान गोपालदास वरैया से 'ईश्वर सृष्टि करता है या नहीं' विषय पर।

स्वामी दर्शनानंद जी ने अपने जीवन में स्व पुरुषार्थ से लगभग एक दर्जन पत्रों का संपादन तथा प्रकाशन किया। उनके द्वारा प्रवर्तित पत्रों का विवरण इस प्रकार है-

(१) १८८९ में काशी से तिमिर नाशक साप्ताहिक।
(२) दानापुर से प्रकाशित 'आर्यावर्त' का संपादन।
(३) जगरांव (पंजाब) से 'वेद प्रचारक' मासिक तथा 'भारत उद्धार 'साप्ताहिक।
(४) मुरादाबाद से १८९७ में वैदिक धर्म साप्ताहिक।
(५) १८९८ में दिल्ली से 'वैदिक धर्म' तथा १८९९ में मासिक ''वैदिक मैगजीन''।
(६) १९०० में आगरा से 'तालिबे इल्म' उर्दू साप्ताहिक।
(७) सिकंदराबाद (उत्तर प्रदेश) से 'गुरुकुल समाचार'।
(८) बदायूं से 'आर्य सिद्धांत' मासिक तथा साप्ताहिक 'उर्दू मुबाहिसा'।
(९) १९०८ में लाहौर से 'ऋषि दयानंद' नामक मासिक पत्र।
(१०) १९०८ में चोहा भक्तां (रावलपिंडी) से ''वैदिक फिलोसोफी''।

शास्त्रार्थ करने तथा पत्र निकालने के साथ-साथ स्वामी जी को गुरुकुल की स्थापना करने का भी शौक था। उनकी धारणा थी कि मुझे तो गुरुकुलों की स्थापना कर उनकी व्यवस्था को योग्य हाथों में सौंप देना है, आगे इन्हें चलाने का काम दूसरों का है। उन्होंने सिकंदराबाद, बदायूं ज्वालापुर तथा रावलपिंडी के निकट चोहा भक्तां में गुरुकुलों की स्थापना की। उनके गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर को विशेष ख्याति प्राप्त हुई।

स्वामी दर्शनानंद जी वस्तुतः लेखनी के धनी थे। वह वर्षों तक प्रतिदिन नियम पूर्वक किसी एक सैद्धांतिक विषय पर एक ट्रैक्ट लिखते रहे। प्रायः कहा जाता है कि उन्होंने लगभग २५० ट्रैक्ट लिखे। योग और मीमांसा को छोड़कर शेष चार दर्शनों पर उन्होंने तर्कपूर्ण भाष्य लिखे। ईश से माण्डूक्य पर्यंत उपनिषदों की सरल एवं सुबोध व्याख्या लिखी। मनुस्मृति और गीता पर भी उनकी टिकाएं मिलती हैं। जैन ईसाई तथा इस्लाम मत पर उनकी समीक्षात्मक पुस्तकें पर्याप्त संख्या में है। स्वामी दर्शनानंद का यह साहित्य हजारों पृष्ठों में समाविष्ट हुआ है।

समस्त उत्तर भारत में भ्रमण तथा अनवरत ग्रंथ लेखन एवं शास्त्रार्थ आदि बौद्धिक कार्मों में लगे रहने के कारण स्वामी जी का स्वास्थ्य शिथिल हो गया था। वह हाथरस के अस्पताल में चिकित्सा हेतु लाए गए और यहीं पर ११ मई १९१३ को उनका देहांत हुआ। आर्य समाज में बौद्धिक प्रतिभा के धनी स्वामी दर्शनानंद जैसे मनस्वी दृढ़ धारणा वाले पुरुष बहुत कम हुए हैं। उनकी पुण्यतिथि पर उस महापुरुष को शत शत नमन।

मंत्री
जिला आर्य प्रतिनिधि सभा,
कानपुर नगर

पृष्ठ.....१ का शेष.....

हजार मन्त्र वाले ऋग्वेद का भी लगभग आधा भाष्य वह हमें दे गये हैं। असामयिक मृत्यु के कारण वह वेदभाष्य का कार्य पूर्ण नहीं कर सके। उनका वेदभाष्य अपूर्व है जिसकी तुलना उनके पूर्ववर्ती किसी भाष्यकार से नहीं की जा सकती। क्रान्तिकारी एवं योगी अरविन्द ने उनके वेदभाष्य की प्रशंसा की है। गुणवत्ता की दृष्टि से ऋषि दयानन्द जी का भाष्य सर्वश्रेष्ठ है। उनके बाद उनके अनेक शिष्यों व अनुयायियों ने वेदों पर भाष्य किये हैं। कुछ नाम हैं पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार, पं. जयदेव विद्यालंकार, पं. आर्यमुनि, स्वामी ब्रह्ममुनि, पं. विश्वनाथ विद्यालंकार, पं. क्षेमकरण दास त्रिवेदी, आचार्य डा. रामनाथ वेदालंकार, स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती आदि। स्वामी दयानन्द जी के अनेक शिष्यों ने वेदों पर उच्च कोटि के ग्रन्थ लिखे हैं जो स्वामी दयानन्द जी के काल में उपलब्ध नहीं होते थे। अतः स्वामी दयानन्द जी की वेदों को जो देन है उसे उनके जीवन व व्यक्तित्व का सर्वोत्कृष्ट गुण कह सकते हैं। यह सब कार्य एक सफल योग साधक होने के फलस्वरूप ही सम्पन्न कर सके थे। वेदों का हिन्दी में भी भाष्य व भाषार्थ करना तो उनकी ऐसी सूझ थी जिसके लिए उनकी जितनी भी प्रशंसा की जाये उतनी ही कम है। इससे पूर्व ऐसा विचार शायद किसी के मस्तिष्क में नहीं आया कि हिन्दी में भी वेदों का भाष्य किया जा सकता। उनके इस कार्य से सहस्रों व लाखों संस्कृत न जानने वाले भी वेदों के ज्ञान व तात्पर्य से परिचित हुए हैं। हम भी उनमें से एक हैं।

योग के क्षेत्र में स्वामी दयानन्द जी की एक प्रमुख देन हमें उनकी सन्ध्या पद्धति प्रतीत होती हैं। सन्ध्या भी ध्यान व समाधि प्राप्त कराने में साधन रूप एक प्रकार का योग का ही ग्रन्थ है। सन्ध्या के सफल होने पर साधक ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है। यदि ईश्वर साक्षात्कार न भी हो तब भी योग के सात संगों को तो वह प्राप्त करता ही है। सन्ध्या का प्रयोगकर्ता वा साधक सन्ध्या से समाधि को या तो प्राप्त कर लेता है या कुछ दूरी पर रहता है। ऋषि दयानन्द की प्रेरणा व आन्दोलन के फलस्वरूप आज विश्व के करोड़ों लोग उनकी लिखी विधि से प्रातः व सायं सन्ध्या वा सम्यक् ध्यान करते हैं। सन्ध्या में अघमर्षण, मनसा-परिक्रमा, उपस्थान, समर्पण आदि मन्त्रों का विशेष महत्व प्रतीत होता है। अघमर्षण के मन्त्रों से पाप न करने वा पाप छोड़ने की प्रेरणा सन्ध्या करने वाले साधक को मिलती है। मनसापरिक्रमा के मन्त्रों से भक्त व साधक ईश्वर को सभी दिशाओं में विद्यमान वा उपस्थित पाता है जो उसे हर क्षण हर पल देख रहा है। ईश्वर की दृष्टि हम पर हर पल व हर क्षण २४X७ रहती है। हम ऐसा कोई कार्य कर नहीं सकते जो ईश्वर की दृष्टि में आये। अतः हमें अपने शुभ व अशुभ सभी कर्मों के फल अवश्यमेव भोगने होते हैं। अशुभ कर्मों का फल दुःख होता है। यह हमें कर्म के परिमाण के अनुसार ही मिलता है। जैसा व जितना शुभ व अशुभ कर्म होगा उसका वैसा व उतना ही सुख व दुःख रूपी परिणाम व परिमाण होगा। अतः सन्ध्या का साधक पाप करना छोड़ देता है। यह भी सन्ध्या की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है जबकि अन्य मतों में प्रायः ऐसा नहीं होता। उपस्थान मन्त्र में हम ईश्वर को अपने समीप व आत्मा के भीतर अनुभव करने का प्रयास करते हैं और विचार करने पर यह सत्य सिद्ध होता है कि ईश्वर सर्वव्यापक होने से हमारे बाहर व भीतर दोनों स्थानों पर है। इसमें हम ईश्वर के गुणों का वर्णन करते हैं और उससे स्वस्थ शरीर, बलवान इन्द्रिय शक्ति और सौ व अधिक वर्षों की आयु मांगते हैं। गायत्री मन्त्र बोल कर हम ईश्वर से बुद्धि की पवित्रता व उसे सन्मार्ग में चलने की प्रेरणा करने की प्रार्थना करते हैं। समर्पण मन्त्र बोलकर हम ईश्वर से धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को आज व अभी प्रदान करने की प्रार्थना करते हैं। ईश्वर को नमन के साथ हमारी सन्ध्या समाप्त होती है। वेदों का स्वाध्याय भी सन्ध्या का अनिवार्य अंग है। सभी वैदिक धर्मी अनुयायी वेदों का स्वाध्याय करते हैं जिससे वह अन्धविश्वास, मिथ्या ज्ञान व दुर्गुणों से बचते हैं। वैदिक सन्ध्या भी ऋषि दयानन्द की मानव मात्र को बहुत बड़ी देन है। यह बात अलग है कि कोई मनुष्य मत-मतान्तरों की अविद्या के कारण उसे ग्रहण करे या न करे। जो करता है वह अपना लाभ करता है और जो नहीं करता वह अपनी हानि करता है।

स्वामी दयानन्द जी सच्चे योगी एवं वेदर्षि थे। वह ईश्वरभक्त, वेदभक्त, देशभक्त, मातृ-पितृभक्त, आचार्य व गुरुभक्त, देश व समाज के हितैषी, देश के स्वर्णिम भविष्य के स्वप्नद्रष्टा, सच्चे समाज सुधारक, अविद्या व अन्धविश्वास निवारक, देशवासियों को सत्यपथानुगामी बनाने वाले, सामाजिक असमानता को दूर करने वाले, सबको वेदाधिकार दिलाने वाले, समाज से छुआछूत व ऊंच-नीच के भेदभाव को दूर करने वाले, दलितों व ब्राह्मण आदि सभी को वेद पढ़कर उच्च कोटि का विद्वान व योगी बनने की प्रेरणा करने व अधिकार दिलाने वाले इतिहास के अपूर्व आदर्श महापुरुष थे। उन्होंने हमें सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कार विधि, आर्याभिविनय आदि अनेक दिव्य ज्ञान के ग्रन्थ प्रदान किये हैं। इनके कारण हम संसार में आज भी विश्व गुरु हैं। स्वामी दयानन्द के कारण मत-मतान्तरों के आचार्यों को उनके मतों व ग्रन्थों के अविद्यायुक्त होने का ज्ञान व अनुभव हुआ है। कोई न तो वैदिक सिद्धान्तों का खण्डन करता है और न आर्यसमाज के विद्वानों से किसी विषय पर शास्त्रार्थ के लिए तत्पर होता है। लेख को विराम देने से पूर्व हम यह कहना चाहते हैं कि स्वामी दयानन्द जी जैसा ब्रह्मचारी, योगी व वेदज्ञानी महाभारतकाल के बाद दूसरा नहीं हुआ। हम उनको नमन करते है॥

पृष्ठ.....५ का शेष.....

अपने ग्रन्थों में कहीं पर इसका उल्लेख क्यों नहीं किया?

उत्तर टिप्पणी २३ - यजुर्वेद २६/१४ के भाष्य में जो कार्तिक आदि शब्द प्रयोग ही बहुत बड़ा उल्लेख है परन्तु आप जब माने तब न! ऐसे ही कहीं अन्यत्र भी प्रकरण वशात् उल्लेख होंगे। एक स्वाभाविक सत्य है कि उनको गुजराती भाषा आती रही होगी। अब इस बात को इस दृष्टिकोण से पूछें कि क्या महर्षि ने ऐसा कहीं पर लिखा है कि उनको गुजराती भी आती है? ये सब स्वाभाविक सत्य के रूप में जानी जानें वाले सत्य हैं।गुजरात में कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से चान्द्र नव वर्ष मानने की नहीं जानकारी की बात है।

दूसरी बात आर्यसमाज इतने वर्षो से चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को नववर्ष मनाता आ रहा है तो वह क्या महर्षि दयानन्द की मान्यता के विरुद्ध मनाता रहा है?

उत्तर- टिप्पणी २४ - १००% सत्य है कि आर्यसमाज चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को नववर्ष मनाता आ रहा है तो वह महर्षि दयानन्द की मान्यता के विरुद्ध ही मनाता रहा है। कैसे ये अपकार्य शुरू हुवा, इसकी जानकारी मुझे नहीं है। स्वयं स्वामीश्री के प्रमाण से, ''.... आगे मुम्बई में चैत्र शुक्ल ५ शनिवार के दिन सन्ध्या के साढ़ेपांच बजते आर्य समाज का आनन्द पूर्वक आरम्भ हुवा। .... '' वर्तमान वर्षीय वैदिक पंचाङ्ग के अन्तिम एक कवर पृष्ठ पर हमने यह पत्र प्रकाशित किया हुवा है - देख सकते हैं। आर्य पर्व पद्धति, आर्यधर्म प्रकाशन, द्वितीय संस्करण पृष्ठ ६६ पर यही दिया हुवा है। दयाल मुनि कृत ऋषि दयानन्द की प्रारम्भिक जीवनी केपृष्ठ ७ पर भी यही दिया हुवा है। समस्त आर्य जगत को ये भी संज्ञान में रहे कि स्वयं आप अपनी पुस्तक ऋषि दयानन्द और आर्य समाज -भाग १ के पृष्ट २६३ पर क्या लिखते हैं, देख लीजिये, ''अन्त में १० अप्रैल १८७५ ई० को बम्बई में और जून १८७७ ई० में लाहौर में आर्य समाज का गठन किया गया। ..''। इसी ग्रन्थ के भाग २, पृष्ठ १८७ पर भी आपके द्वारा १० अप्रैल १८७५ यानी चैत्र शुक्ल पंचमी के दिन ही आर्य समाज की स्थापना हुयी बताई गयी है।

''इनमें से यह वर्तमान वर्ष (७७) सतहत्तरवाँ है, जिसको आर्य लोग विक्रम का (१९३३) उन्नीस सौ तेत्तीसवाँ संवत् कहते हैं।'' मैं पूछना चाहता हूँ यहाँ पर जो स्वामी जी ने विक्रम संवत् १९३३ लिखा है और इसे आर्य संवत् कहा है। और 'आर्य संवत्' से चैत्र वाला संवत् मानते थे या कार्तिक से प्रारम्भ होने वाला संवत् मानते थे।

उत्तर टिप्पणी २५ - आप अपनी जानकारी को सही कर लीजिये। दोनों ही संवत् विक्रम /आर्य संवत् हैं।

तो फिर यह क्यों माने कि वे गुजराती पंचाङ्ग का प्रयोग करते थे और यही बात स्वामी जी के भाष्य से भी प्रमाणित होती है।

उत्तर टिप्पणी २६ - संवत्सर प्रकरण से कार्तिक आदि कहते हुए कोई भी चैत्रीय संवत्सर के सन्दर्भ से कह ही नहीं सकता। यह एक गुजराती परिवेश में पला व बड़ा हुवा व्यक्ति ही कह सकता है। ये मातृ भाषाप्रसूत संस्कार की बात है। कार्तिकीय कहना संवत्सर सन्दर्भ से चान्द्र मासों का क्रम है। ऐसा क्रम केवल कार्तिकीय पंचाङ्गों में ही लागू है। यह एक प्रचलन है जो कि अज्ञातकाल से है और आज भी है। ऋतुक्रम का कथन चैत्रादि सौर मासक्रम से है और सारे भारतवर्ष के लिए है। जैसा कि पहले भी स्पष्ट कर चूका हूँ कि कार्तिक आदि कहते हुए चान्द्र मासों का क्रम एक गुजराती व्यक्ति ही कहा सकता है।

तो फिर इस प्रकार के अप्रमाणिक तथ्यों के द्वारा महर्षि दयानन्द जैसे महापुरुष की जन्मतिथि को विकृत करने का अशोभनीय कार्य नहीं करना चाहिए।

उत्तर टिप्पणी २७ - वाह! मान्यवर वाह! आप सब महर्षि के स्वयं के कथन - प्रमाण को नकार कर गलत तिथि से आर्य समाज स्थापना दिवस मना कर भी सही हो गये और मैं उनके वचनों का सम्मानक गलत होगया? मैं उनके कथनों के आदर से जन्म तिथि को विकृत कर रहा हूँ? पुनः उनके वचन की सिद्धि कालगणना के ज्योतिषीय आधार को नकार कर आप सब सही होगये?...और मैं उनके चारों वचनों की एक साथ सिद्धि और काल गणना के ज्योतिषीय आधार को स्पष्ट करके उनकी जन्म तिथि को विकृत कर रहा हूँ ? और आप जिनको (जन्म तिथि का निर्धारण करते हुए) ज्योतिषीय गणित की जानकारी तो छोड़िये सूचना तक नहीं है, सही हो गए ? महर्षि कह रहे हैं, ''..... पिता ने मुझे बुलाके विवाह की तैयारी कर दी तब तक २१वां वर्ष भी पूरा होगया। जब मैंने निश्चित जाना कि अब विवाह किये बिना कदापि न छोड़ेंगे फिर गुप् चुप १९०३ के वर्ष में घर छोड़के सन्ध्या के समय भाग उठा, ..''। आप हैं कि उनके २१वें वर्ष की पूर्ति कर रहे हैं १२ फरवरी १८४६ को और संवत् १९०३ शुरू हुवा बुधवार, १८ अक्टूबर १८४६ को और फिर भी आप सही हैं?

अर्थात् जैसे विक्रम संवत् १९३३ फाल्गुन मास, कृष्णपक्ष, षष्ठी, शनिवार के दिन चतुर्थ प्रहर के आरम्भ में यह बात हमने लिखी है, इसी प्रकार से सब व्यवहार आर्य लोग बालक से वृद्ध पर्यन्त करते और जानते चले आये हैं। जैसे बहीखाते में मिती डालते हैं, वैसे ही महीना और वर्ष बढाते-घटाते चले जाते हैं। इसी प्रकार आर्य लोग तिथिपत्र में भी वर्ष, मास और दिन आदि लिखते चले आते हैं। और यही इतिहास आज पर्यन्त सब आर्यावर्त देश में एक सा वर्तमान हो रहा है।'' अब पाठक! आप ही विचार करें इन उपरोक्त पंक्तियों से आप लोगों को लगता है कि महर्षि दयानन्द गुजराती पंचाङ्ग का प्रयोग करते थे?

उत्तर टिप्पणी २८ - मान्यवर शास्त्री जी, ये आपकी गलत अटकल है। ये ऋषिवर ने सृष्ट्यादि गणना के सन्दर्भ में कहा है। इसका चैत्रादि और कार्तिकादि से कोई सम्बन्ध या सन्दर्भ नहीं है।

संवाद यह है कि महर्षि दयानन्द कौन से संवत् के आधार पर कौन सी तिथि, वार, नक्षत्र, मास, पक्ष और संवत्सर का प्रयोग करते थे? वे कार्तिकीय संवत् का प्रयोग करते थे या चैत्रीय संवत् का प्रयोग करते थे? और यह बात स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द ने आत्मचरित्र में संवत् बताया है वह चैत्रीय विक्रम संवत् है। जिसको आर्य लोग प्रयोग करते थे और प्रयोग कर रहें हैं, महर्षि दयानन्द के पठन-पाठन, लेखन, विज्ञापन आदि में छपी तिथि और तारीखों से यह स्पष्ट है कि वे चैत्रीय संवत् का प्रयोग करते थे।

उत्तर टिप्पणी २९ - कुछ 'कहे खेत की और सुने खलिहान की' वाली बात सी दीख रही है। संवाद महर्षि की जन्म तिथि का चल रहा है न कि वे कौन से संवत् का प्रयोग करते थे। जैसा कि ऊपर उत्तर टिप्पणी २१ में भी उल्लेख किया है कि हमने इस वर्ष के आर्ष पत्रक के अन्तिम एक कवर पृष्ठ पर महर्षि का जो रविवार, ११ अप्रैल १८७५ का पत्र प्रकाशित किया हुवा है। आप उसमें देख सकते हैं - संवत् १९३१ मिति चैत्र शुद्ध ६ रविवार लिखा हुवा है। आपका अपनी मनपसन्दी से लिया गया निष्कर्ष गलत सावित होता है। सच वही है जो मैंने उत्तर टिप्पणी २१ में लिखा है।

कोई विद्वान बता सकता है कि महर्षि दयानन्द ने यहाँ पर जो मास, तिथि, वार और संवत् की बात की है वह क्या गुजराती है? ''फाल्गुन शक्ल १५ सं. १९३६ दयानन्द सरस्वती, काशी।''

क्या कोई बुद्धिमान व्यक्ति बता सकता है कि महर्षि दयानन्द ने यहाँ पर गुजराती संवत् का प्रयोग किया है अथवा आर्यो के संवत् का प्रयोग किया है?

उत्तर- टिप्पणी ३० - कौन कह रहा है कि ये गुजराती पंचाङ्गानुसार की तिथियां है? और ऐसा कहने की आवश्यकता ही क्या है? रही बात ''फाल्गुन शुक्ल १५ सं. १९३६'' की तो क्या आप ये कह सकते हैं कि ये तिथि गुजराती पंचाङ्ग की तिथि नहीं है? मान्यवर, २६ मार्च १८८० ई० की यह तिथि चैत्रीय और कार्तिकेय दोनों ही विधाओं में एक ही है। कुल मिलाकर ये सब बातें विषय से बाहर की होने से व्यर्थ की बातें भी हैं।

इन सब प्रमाणों से सिद्ध है कि महर्षि दयानन्द राष्ट्रीय, आर्यो के पंचाङ्ग का प्रयोग करते थे गुजराती पंचाङ्ग का नहीं। क्योंकि वे राष्ट्रीय भावापन्न पुरुष थे। वे एक राष्ट्रीय भाषा एक संस्कृति और एक ध्वज के समुपासक थे। इसके लिए जीवन मे उन्होंने अनेक प्रयास किए थे।

उत्तर टिप्पणी ३१ - ये सब बातें शिशु मूल शङ्कर से जुडी हुयी नहीं है। शिशु जो मूल शङ्कर नाम से नामित हुवा उनके माता पिता और उनके पुरोहित चैत्रीय पंचाङ्ग का उपोग करते रहे होंगे क्या और वह भी आज से लगभग १९९ वर्ष पूर्व? क्या आपको पता है कि १९५२ में जब भारत सरकार द्वारा गठित कैलेण्डर रिफार्म कमेटी ने देशभर में प्रकाशित हो रहे पंचाङ्गों की प्रतियां माँगी थी तो केवल ६० पंचाङ्ग ही मिले थे। - - - और हम बात कर रहे हैं यहाँ १८२५ ई० की। अगर स्वामी जी महाराज आर्यो का पंचाङ्ग ही उपयोग करते थे तो फिर उन्होंने २८ जुलाई १८८३ ई० को श्रीयुत महाशय मनोहरदास खत्री, सम्पादक 'भारत मित्र' कलकत्ता को ''सनातन आर्य धर्म के प्रयोजनादि विषयों में आर्य पंचाङ्ग बनाने का विषय' लेकर पत्र क्यों लिखा? इस पत्र को कोई भी महानुभाव आर्य कुल गौरव प्रा० राजेंद्र जिज्ञासु जी द्वारा सम्पादित पुस्तक 'महर्षि दयानन्द का अपूर्व पत्र -व्यवहार' पृष्ठ ८९ पर देख सकते हैं। याद रहे, वेदों के मार्गदर्शन के अन्तर्गत गणितकृत 'श्री मोहन कृति आर्ष पत्रकम् (एकमात्र वैदिक पंचाङ्ग)' से पूर्व आधुनिक भारत में कोई आर्य पंचाङ्ग नहीं था।

यह सब देखते और समझते हुए भी आपसे कितना बड़ा झूठ प्रचारित हो गया है कि महर्षि ने सर्वत्र उत्तर भारतीय विक्रम संवत् का ही उल्लेख किया है। यह अत्यन्त ही आश्चर्यजनक और अति दुखद है।

उत्तर टिप्पणी ३२ - आपके प्रति मेरी ये टिप्पणी सत्य है। सच यही है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने यदा कदा कार्तिकीय और चैत्रीय दोनों ही पंचाङ्गों और साथ ही कहीं कहीं ईस्वी सन् के अनुसार तिथियों का उल्लेख किया है। इस से भी आपका कथन मिथ्या सिद्ध हो जाता है।

सच कहा आपने लोकेश जी! यह सब बिना देखे और बिना सोचे! आपके द्वारा कितने बडे झूठ का प्रचार हो गया कि महर्षि दयानन्द गुजराती पंचाङ्ग का प्रयोग करते थे।

उत्तर टिप्पणी ३३ - आप मुझे बताइये कि मैंने कहाँ पर ऐसा लिखा है कि, ''महर्षि दयानन्द गुजराती पंचाङ्ग का प्रयोग करते थे।'' मैं तो क्या, महर्षि के बारे में ये बात कोई भी नहीं कह सकता। मेरी बात स्पष्टता से समझ ली जाये कि -

१. बालक और किशोर मूल शंकर/ धनेश जी त्रिवेदी से जुडी गृह त्याग से पूर्व की कोई भी चान्द्र तिथि केवल और केवल गुजराती संवत् की ही हो सकती है।

२. स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा उपयुक्त तिथियों के बारे में ऐसा कुछ नहीं कह सकते हैं। उनके लिखे में चैत्रीय तिथि और कार्तिकीय तिथि दोनों ही मुझे मिली हैं। यही मेरा सच है।

महर्षि दयानन्द की वास्तविक जन्मतिथि तात्कालिक गुजराती पंचाङ्ग के अनुसार मानने का, कोई कारण ही नहीं है। महर्षि दयानन्द गुजरात में पैदा हुए थे इसलिए उनकी जन्मतिथि गुजराती पंचाङ्ग के अनुसार ही मानी जाए। ये हेतु हास्यास्पद है।

उत्तर टिप्पणी ३४ - आपकी ये टिप्पणी एक स्वाभाविक सत्य को नकारने वाली है।

लोकेश जी ने लिखा है कि ''इससे दूसरा कुछ हो ही नहीं सकता।'' यह कितनी दम्भ की बात है कि बिना अन्वेषण किये इन्होंने कह दिया कि यही सही तथ्य है। मोहन कृति आर्ष पत्रक पर छपा आपका आलेख भी इस तरह के समीक्षा करने योग्य है।

उत्तर टिप्पणी ३५ - जब तक आप १८८१ और १९०३ के संवत् को तात्कालिक गुजराती संवत् से नहीं लेंगे तब तक आप या कोई भी विद्वान स्वामी जी की जन्म तिथि की सच्चाई तक नहीं पंहुच सकता। दूसरी बात ज्योतिष का काल गणना सिद्धान्त है जिसकी प्रामाणिकता सर्वोपरि है। शास्त्री जी, आप ऐसा कीजिये कि अपने किसी भी पारिवारिक सदस्य का ग्रह चक्र बनाकर मुझे भेज दीजिये और मैं उसकी तिथि निकाल कर दे दूंगा। आप चाहें तो एक गड़बड़ करके गलत ग्रह चक्र (कुण्डली) भी भेज दीजिये और आप देखेंगे कि मैं आपको यह भी बता दूंगा कि वह गड़बड़ का ग्रह चक्र कौन सा है। अगर आप सिर्फ ग्रह चक्र देंगे तो मेरी दी हुयी तिथि अधिक से अधिक १ या २ दिन के अन्तर की हो सकती है। अगर आप सूर्य और चन्द्र की स्पष्ट स्थिति सहित देंगे तो मेरी बात १ दिन भी गलत नहीं हो सकती और यदि आप लग्न की स्पष्ट गणितागत स्थिति भी देंगे तो में आपको जन्म का समय भी बता सकता हूँ। मुझे प्रसन्नता है कि आज आर्य समाज में मेरे से ज्योतिष शिक्षण पाए ऐसे अनेकों ऐसे आचार्य, ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियां और आम आर्यजन हैं जो कि बिना मेरी सहायता के आपको ये सारी गणित करके दे सकते हैं। जब तक आप उपरोक्त पैमानों पर खरे नहीं उतरते तब तक आप मेरे लेख की समीक्षा नहीं कर सकते।

आपके द्वारा बताई गई तथाकथित प्रमाणित जन्मतिथि परोपकारिणी सभा ने अब तक स्वीकृत क्यों नहीं की? इस पर अपने विवेक से भी विद्वानों को बुलाकर संवाद कर सकते थे। परन्तु इस प्रकार के विनम्र प्रयास से आप दूर रहे आपने अनेक लेखों में बडे अव्यवहारिक और अमर्यादित टिप्पणियां आर्य विद्वानों और संस्थाओं के लिए की है।

उत्तर टिप्पणी ३६ -कोई मेरे पंचाङ्ग को या मेरे द्वारा प्रमाणित महर्षि की जन्म तिथि को क्यों नहीं स्वीकार करते, ये बात तो आपको उनसे ही पूछनी चाहिए जिनको आप लक्ष्य करके मुझे पूछ रहे हैं। रही बात संवाद की तो अजमेर के शास्त्रार्थ /संवाद में आप भी मुझे संवाद के अर्थ से बुलावा सकते थे। परन्तु आप चुप रहे। रही बात अव्यवहारिक और अमर्यादित टिप्पणियों की तो मैं पूरी विनम्रता और सब की प्रतिष्ठा के लिए सद्भाव पूर्वक स्पष्ट करना चाहूँगा कि मेरे से अनजाने से ही ऐसा हुवा होगा। आप कृपया बात को स्पष्ट करें कि मैंने कब और किसके लिए ऐसा किया है। आप विश्वाश कीजिये, मैं उस व्यक्ति से सार्वजनिक रूप से क्षमा याचना करूँगा। ये ठीक है कि मैं कभी कभी सही मार्ग दर्शन के भाव से कुछ लोगों को उनकी गलतियां स्पष्ट करता हूँ। पर मैं उनकी भी उन कमियों को कभी सार्वजनिक नहीं करता।

कतिपय कारणों से आर्य समाज में ज्योतिष विषय को उस तरह से नहीं लिया गया है जिस तरह से लेना चाहिए था। महर्षि की जन्म तिथि का निर्धारण न हो पाना और अब मैंने कर लिया है तो उसको स्वीकृति न मिलना इसी बात का एक परिणाम है। मुझे खुशी है कि आज हमारे सतत प्रयासों से ये अभाव दूर होता जा रहा है। अनेकों लोग हमारे प्रयासों के फल को अनुभव कर रहे हैं। तर्को की गुत्थमगुत्थी के इस संवाद में शायद कोई आर्य जन या विद्वान अपना नाम ठीक न समझे, इसी एक कारण से नाम नहीं दे रहा हूँ किन्तु कुछ सम्पर्क विद्वान इस बात को अनुभव करने लगे हैं कि आज आर्य समाज में ज्योतिष या पंचाङ्ग जैसे विषय पर समाज में २०% तक की प्रगति आ गयी है और ये सब, उनके शब्दों में 'हमारे' कारण से ही सम्भव हो पायी है।

महर्षि दयानन्द का स्वयं के द्वारा हस्तलिखित जन्मचरित्र आपके लिए ही क्यों? सबके लिए सबसे बडा और अन्तिम प्रमाण है। हम भी उसी के आधार पर ही अपनी बात रख रहें हैं।

उत्तर टिप्पणी ३७ - तब फिर आप स्वामी जी की इस बात को कि, ''संवत् १८८१ के वर्ष में जन्म दक्षिण गुजरात प्रान्त देश'' देखते हुए उनके जन्म तिथि के आकलन के लिए कार्तिकीय विक्रम संवत् के आधार का क्यों आपसे नकारा हुवा और क्यों अब भी नकार रहे हैं? मेरी भाषा पर ध्यान दें - पहले आप से नकारा हुवा है। आपने किया नहीं है। किन्तु अब जो हो रहा है वह सब आप कर रहे हैं। पहले जो हुआ उसके लिए नहीं किन्तु आज आप जो कर रहे हैं उसके लिए आप पूर्णतया उत्तरदायी हैं।

क्योंकि महर्षि दयानन्द ने विक्रम संवत् (आर्यो) वाला अर्थात् चैत्रिय वाला ही लिखा है।

उत्तर टिप्पणी ३८ - लौट लौट के फिर वही -वही बात। ये कथन सही नहीं है। स्थान स्थान पर एक ही बात को अलग अलग शब्दों में उठाते हुए पिष्टिपेषण के कारण मुझे भी उत्तर में ऐसा करना पड़ रहा है। मैंने आपके एक अन्य आक्षेप के उत्तर में ये बात स्पष्ट की है कि महर्षि जब, जहाँ पर होते थे तो तब और वहां पर जो पंचाङ्ग उनको मिला उसके अनुसार ही दिनाँक लिखते थे।

महानुभावों! महर्षि दयानन्द के 'जीवनी लेखक' विद्वानों के अन्वेषण और उनके अथक प्रयासों से तथा महर्षि दयानन्द के जीवन काल में उनसे बातचीत किए हुए उनके भक्तों और पारिवारिक जनों के अनुमोदन से यह तथ्य निर्विवाद रुप से प्रमाणित है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती की जन्मतिथि संवत् १८८१ विक्रमी, फाल्गुन मास, कृष्ण पक्ष, मूल नक्षत्र की सूर्योदय की तिथि, दशमी तदनुसार शनिवार १२ फरवरी सन् १८२५ ई. है।

उत्तर टिप्पणी ३९ - आपका ये आकलन पूरी तौर पर असत्य और भ्रामक है। ऐसा हमें महर्षि के वचन प्रमाण और ज्योतिष के गणितीय प्रमाण से सिद्ध नहीं है। महर्षि को २१वां वर्ष पूरा होते ही नातिचिरं घर से निकलना पड़ा था। 'भाग उठा' शब्द प्रयोग करने से उनके मानसिक अधैर्य और गृह त्याग में शीघ्रता करने का भाव स्पष्ट होता है। इस कारण से उक्त मिथ्या जन्म तिथि को लेने पर संवत् १९०३ में गृह त्याग की तिथि नहीं सिद्द होती। आपका लेख ''ऋषि दयानन्द का वंशवृक्ष'' ठीक से पढ़ा है। उस सारे लेख में एक भी बात ऐसी नहीं पायी जो मूलशङ्कर की जन्म तिथि को ठीक ठीक लक्षित (पिन पॉइण्ट) करती हो। लोकेषणा से पीड़ित व्यक्तित्व के रूप में अपने जो छवि वर्धनकिया है उसके लिए आपका और पत्रिका के विद्वत सम्पादक मण्डल का भी हार्दिक अभिनन्दन। आपके इन भद्र वचनों से उन आर्य जनों का भी उत्साहवर्धन होगा जो मुझे ऐसे पौराणिक के रूप में व्यक्त कर रहे हैं जो सारे आर्य समाज को ज्योतिष के चक्कर में फंसाना चाहता है। इधर हमारे पौराणिक ज्योतिषियों में कुछ ऐसे है जो प्रचारित कर रहे हैं कि आचार्य दार्शनिय लोकेश तो आर्य समाजी है और आर्य तो मुसलामानों से भी बदतर होते हैं। इनको तो धर्म का नाश ही करना है। - - - जो भी हो, देखते हैं -कठिन डगर के रहते भी क्या कुछ हो पाता है। धन्यवाद।

चलभाष-९४१२३५४०३६

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२२४१/५७ -आर्यमित्र आर्यमित्र १६ व २३ मई, २०२४ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४/२०१६-२१ एक प्रति ₹ ५.००

आर्य मित्र

नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०९४१२६७८५७१, मंत्री-०९४१५३६५५७६, सम्पादक-९४५१८८१९७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,
.....

ईश्वर की भक्ति करो

-आचार्य हरिदेव

मनुष्य कई प्रकार के नशों का पान करता है, भांग, शराब, गांजा, अफीम, आदि का सेवन करता है उससे मनुष्य को एक प्रकार का नशा सा प्रतीत होता है जो उसका नाश करने वाला होता है। प्रभु भक्ति भी एक नशा है जिसके सेवन से नाश या ह्रास नहीं अपितु उसका विकास होने लगता है। मानव उन्नति की ओर अग्रसर होने लगता है, भक्ति रुपी सोम रस के पान से क्या मिलता है इसका वर्णन वेद ने इस प्रकार किया है—

(१) वह भगवान् अमर है, न मरने वाला है। जो उसकी भक्ति करता है वह भी अमर हो जाता है, मृत्यु के भय से रहित हो जाता है, उसे किसी प्रकार का कोई भय भयभीत नहीं कर सकता।

(२) भक्ति रस का पान करके मनुष्य आनन्दमय हो जाता है। इस परमानन्द का अनुभव करने लगता है जिसमें दुःख नहीं, शोक नहीं, राग नहीं, द्वेष नहीं, मस्ती ही मस्ती है। न हटने वाली मस्ती है।

(३) भक्ति रस का पान करने से मानव के समीप देवों का सत्पुरुषों का आगमन होने लगता है। गुणी, ज्ञानी लोगों का उसके पास एक मेला सा लगा रहता है। जिससे स्वतः उसे सत्संगति प्राप्त होने लगती है।

(४) भक्ति रस का पान करने तथा ज्ञानी भक्तों की संगति से भक्त में सहसा दिव्य गुणों का आधान और दुर्गुणों का ह्रास होने लगता है। उसमें सद्विचार और सद्गुण आने लगते हैं, दुर्गुण और दुर्विचार दूर भाग जाते हैं।

(५) भक्ति रस का पान करने से मानव के अन्तःकरण में अन्तःज्योति वा प्रकाश उदय हो जाता है। जिससे अन्दर का सारा तम और अज्ञान परे हट जाता है। उस अन्तःज्योति को प्राप्त करके भक्त कभी ठोकर नहीं खाता अपितु उसके मार्ग अपने आप सुन्दर और सुहावने बनते जाते हैं और अन्त में वह प्रभु के सुन्दर धाम को प्राप्त कर लेता है।

(६) भक्त के सब प्रकार के आन्तरिक तथा वाह्य शत्रु परास्त हो जाते हैं। काम, क्रोध, मोह, अहंकार आदि आन्तरिक कुप्रवृत्तियाँ और दुष्ट पुरुषों की कुरीतियां उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। धूर्त मनुष्यों की धूर्तताएं भी उसके समक्ष सतत् विफल रहती हैं व भक्त के मार्ग निष्कण्टक होते जाते हैं। वेद कहता है कि—

अपाम सोममृताभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान् कृण्वदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ।।

—(ऋ० ८/४८/३)

'भावार्थ—'हे अमृत रुप ईश्वर, हे जरा मृत्यु रहित देव ! हमने तेरे सोम का भक्ति रस का पान किया है। अतः हम अमर हो गये हैं। हमने तेरी ज्योति को प्राप्त कर लिया है भला शत्रु हमारा क्या बिगाड़ सकता है। और दुष्ट मनुष्य की धूर्तता भी हमारा क्या बिगाड़ सकती हैं।

प्रस्तुतिः भूपेश आर्य

हा शोक, महाशोक समर्पित ऋषि भक्त, शब्दों के जादूगर पं. वेद प्रकाश श्रोत्रिय का निधन

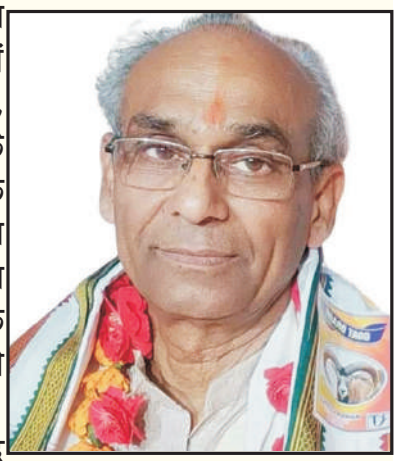

आर्य जगत के मूर्धन्य विद्वान अपने प्रवचनों से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देने वाले, समर्पित ऋषि भक्त, शब्दों के जादूगर संस्कृतनिष्ठ, अलंकारिक एवं काव्यात्मक शैली के विशेषज्ञ आचार्य पंडित वेद प्रकाश श्रोत्रिय जी का आकस्मिक निधन दिनांक ११ मई, २०२४ की रात्रि को हो गया।

उ.प्र. के बदायूँ जनपद के ग्रामीण अंचल निवासी स्व. श्रोत्रिय जी लम्बे समय से सपरिवार दिल्ली में निवास कर रहे थे। गुरूकुलीय शिक्षा प्राप्त एवं आधुनिक भौतिक विज्ञान आदि विषयों के उच्च स्तरीय विद्वान स्व. पं. वेद प्रकाश श्रोत्रिय ने विदेशों में भी विद्वानों व वैज्ञानिकों के मध्य अपनी युक्तियों व तर्कों के द्वारा वैदिक सिद्धान्तों का लोहा मनवाया। विद्या गुरू आचार्य विश्व बन्धु शास्त्री से ओजस्वी व्याख्यान शैली स्व. श्रोत्रिय जी को विरासता में मिली थी।

स्व. पं. वेद प्रकाश श्रोत्रिय के देहावसान से सम्पूर्ण आर्य जगत स्तब्ध व आवाक है। उनकी रिक्तता की भरपाई होना सम्भव नहीं है। ईश्वरीय नियम अटल व अखण्ड हैं। हम सभी उसकी व्यवस्था के आगे नतमस्तक हैं।

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा एवं समस्त पदाधिकारीगण स्व. वेद प्रकाश श्रोत्रिय के देहान्त पर अपनी शोक संवेदनायें व्यक्त करते हुए दिवंगत आत्मा की शांति एवं सद्गति हेतु तथा परिजनों को यह दारूण दुःख सहन करने की शक्ति देने की ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। आर्य मित्र परिवार उनके निधन पर भावपूर्ण श्रद्धा सुमन अर्पित करता है।

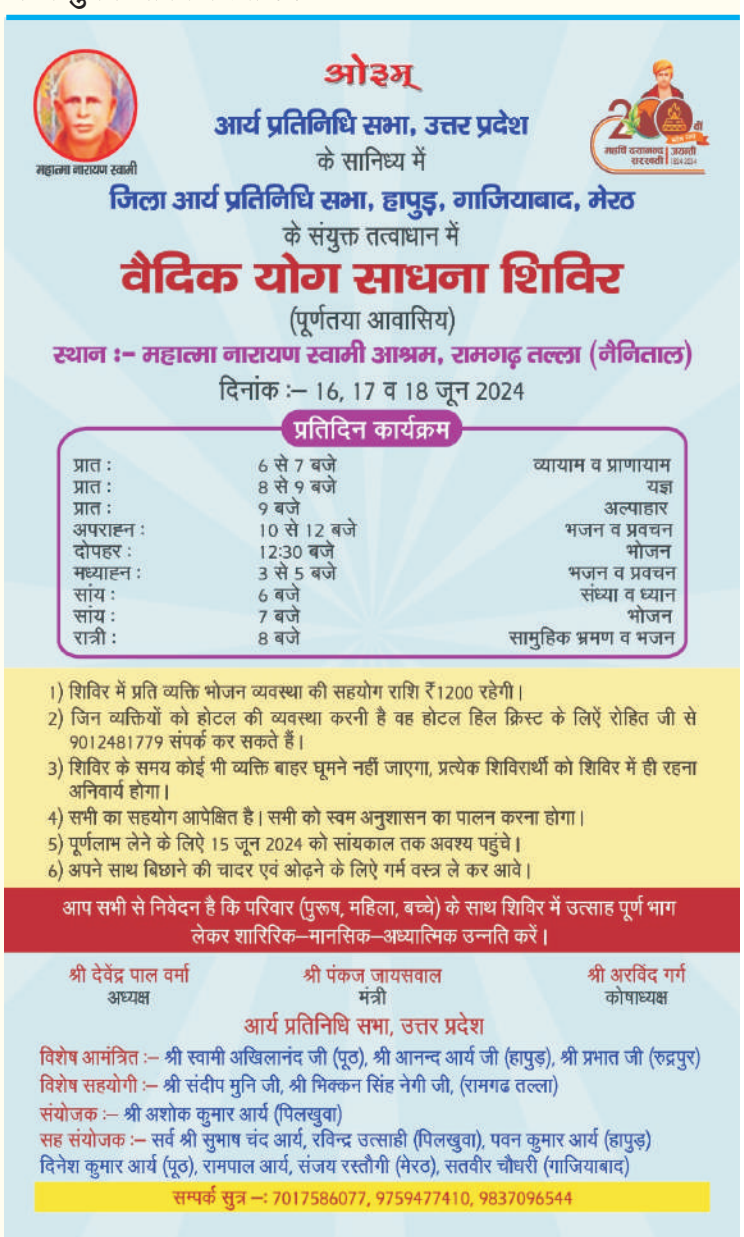

स्वामी-आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक-पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस, 5-मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है-सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।